Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CHANDRALOKAM

JAYADHEV

SRI
K.V.S. GOWRI SANKARA SASTRI
[BOMBAY]
SANSKRIT COLLEGE.
MYLAPORE.
MADRAS-600004

साहित्यं

अलङ्कार काव्यम्

जयदेव कृतम्

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy.

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V. Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

२६५

वेङ्कटचलम्

पीयूषवर्षश्रीजयदेवकविप्रणीतः

चन्द्रालोकः

सविमर्श 'प्रकाश' हिन्दीव्याख्योपेतः

(पञ्चमो मयूखः)

व्याख्याकारः

डॉ० सुरेन्द्रदेव शास्त्री

एम० ए० (संस्कृत तथा हिन्दी), पी-एच० डी०

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, टाउन डिग्री कालेज, बलिया

चौखम्भा विश्वभारती
पो० बाक्स नं० १३९
बाँक (बिना मिलेगा के शामो
वाराणसी-२२१००१
फोन : ६५४४४

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

१९७७

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : तृतीय, वि० सं० २०२३

मूल्य : ३-००

© चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० ८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १३८, वाराणसी-२२१००१

(भारत)

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

THE
HARIDAS SANSKRIT SERIES
265

CHANDRĀLOKA

(FIFTH MAYUKHA)

OF

PIYUSAVARSA SRI JAYADEVA

Edited with

Hindi Commentary, Notes, Introduction, etc.

By

DR. SURENDRA DEVA SASTRI,
M. A. (Hindi and Sanskrit), Ph. D.
Professor and Head of the Department of Sanskrit
Town Degree College, Balia.

THE
Chowkhamba Sanskrit Series Office
VARANASI-221001
1977

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

© The Chowkhamba Sanskrit Series Office
K. 37/99, Gopal Mandir Lane
Post Box 8, Varanasi-221001 (India)
Phone : 63145

Third Edition
1977
Price Rs. 3-00

Also can be had of
Chaukhamba Amarabharati Prakashan
Oriental Publishers & Book – Sellers
Post Box No. 138
K. 37/118, Gopal Mandir Lane, Varanasi-221001
(INDIA)

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भूमिका

आचार्यों ने 'काव्य' का लक्षण भिन्न भिन्न प्रकार से किया है। साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ का कथन है कि 'रसात्मक अथावा हृदय में अद्भुत आनन्द उत्पन्न करनेवाले वाक्य को काव्य कहते हैं' (वाक्यं रसात्मकं काव्यम्)। रसगंगाधर के रचयिता पण्डितराज जगन्नाथ के मत से 'रमणीयार्थ—प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला शब्द ही काव्य है। साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का मत है कि 'लोकोत्तरानन्द-दाता प्रबन्धः काव्यनामभाक्' अर्थात् लोकोत्तर आनन्द प्रदान करनेवाली रचना का नाम ही काव्य है। इसी प्रकार अन्य आचार्यों ने भी काव्य की विभिन्न परिभाषायें की हैं। इसका सुष्ठुतया अनुशीलन करने पर विदित होता है कि सभी आचार्यों के कथनों में एक प्रकार का ऐक्य विद्यमान है। उस ऐक्य को हम दो शब्दों द्वारा कह सकते हैं (१) लोकोत्तर आनन्द का प्रदाता और (२) रमणीयता। अतः यदि काव्य की संक्षिप्त एवं साररूप परिभाषा की जाय तो वह यही हो सकती है कि 'जो भावपूर्ण रमणीय कृति हृदय को प्रभावित करे तथा उसमें अपूर्व एवं अलौकिक आनन्द का सञ्चरण भी करे उसे काव्य कहते हैं।'

मानव-अनुभूतियों और मनोभावों का कल्पना-प्रसूत रूप ही काव्य है। संसार में मानव जो कुछ दृष्टिगोचर करता तथा श्रवण करता है उससे उसे अनेक प्रकार के अनुभव होते हैं तथा उसके हृदय में नाना प्रकार के मनो विकारों की उत्पत्ति होती है। ये अनुभूतियाँ तथा मनोविकार ही समय आने पर काव्य के रूप में परिणत हो जाया करते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्य का मानव-जीवन एवं प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है।

काव्यभेद

शैली, प्रयोजन तथा रमणीयता के आधार पर काव्य के भेद किये गये हैं। शैली के आधार पर काव्य की रचना तीन प्रकार से की जा सकती है—(१) पद्य में तथा (२) गद्य में और तीसरा गद्य तथा पद्य दोनों में। इन

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

आधारों पर काव्य तीन प्रकार के हुए—(१) पदकाव्य, (२) गद्यकाव्य, (३) दोनों के संयोग से उत्पन्न मिश्रकाव्य अथवा चम्पूकाव्य ।

प्रयोजन के आधार पर काव्य मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) दृश्यकाव्य, (२) श्रव्यकाव्य । जिस काव्य का वास्तविक चमत्कार अभिनय होने से प्रतीत हो वह दृश्यकाव्य कहलाता है । जिस काव्य का आनन्द अथवा चमत्कार उसके श्रवण करने अथवा पठन करने से प्रतीत हो उसे श्रव्यकाव्य कहते हैं । उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर दृश्यकाव्य को श्रव्य भी कहा जा सकता है किन्तु श्रव्यकाव्य को दृश्य नहीं कहा जा सकता ।

इसी प्रकार रमणीयता के आधार पर भी काव्य के तीन प्रकारों की कल्पना की गई है । रमणीयता शब्द तथा अर्थ से सम्बन्ध रखती है । शब्द की तीन प्रकार की शक्तियाँ स्वीकार की गई हैं—(१) अभिधाशक्ति, (२) लक्षणा-शक्ति, (३) व्यंजनाशक्ति । इन तीनों प्रकार की शक्तियों के आधार पर अर्थ भी तीन प्रकार के स्वीकार किये गये हैं—(१) वाच्यार्थ, (२) लक्ष्यार्थ (३) व्यंग्यार्थ । अत: इन्हीं शब्द एवं अर्थ की रमणीयता के आधार पर काव्य का निम्न तीन प्रकार से विभाजन किया गया है । जहाँ वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ विशेष चमत्कारयुक्त होता है, वह उत्तम श्रेणी का काव्य, जहाँ दोनों की समानता हो वह मध्यम श्रेणी का काव्य तथा जहाँ वाच्यार्थ में भी विशेष चमत्कार होता है उसे निम्न कोटि का काव्य माना गया है ।

अलंकारत्व

रमणीयता-सम्बन्धी उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि काव्य में रमणीयता उत्पन्न होने के साधन शब्द एवं अर्थ ही हैं । इन शब्द एवं अर्थों के द्वारा जिस भाव की पुष्टि की जाती है वह भाव की पुष्टावस्था ही 'रस' शब्द वाच्य होती है जिसे आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' के अनुसार काव्य की आत्मा कहा गया है । परन्तु जिस प्रकार से आत्मा शरीर के अन्दर रहा करता है और शरीर की उपयोगिता को अपनी स्थिति तक स्थिर रखा करता है, उसी प्रकार रसात्मक कविता में भी रस काव्य को आन्तरिक शोभा को बढ़ाने वाला एवं कविता को स्थिरता प्रदान कराने

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वाला होता है। इतना होने पर भी हमें शरीर की बाह्य शोभा को बढ़ाने के लिये नाना प्रकार के प्रयत्न करने पड़ते हैं। वस्त्र, आभूषणों आदि अनेक बाह्य साधनों के द्वारा हम शरीर के बाह्य-सौन्दर्य की वृद्धि किया करते हैं। इसी भाँति काव्य की बाह्य शोभा को बढ़ाने वाले अलंकार हुआ करते हैं। इस बात को आचार्य दण्डी के शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है—

काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।

अर्थात् काव्य की शोभा बढ़ाने वाले सभी धर्म 'अलंकार' कहलाते हैं। किसी बात को चमत्कारपूर्ण ढंग से कहना ही अलंकार है अथवा काव्य में रसों और भावों को अधिक प्रभावशाली बनाने के निमित्त कथन करने के चमत्कार-पूर्ण अनोखे ढंग को ही 'अलंकार' शब्द से कहा जा सकता है।

विश्व में अलंकार का महत्व महान् है। मनुष्य ही अपनी वस्तुओं को, अपने शरीर को, अपनी सामग्री को अलंकृत नहीं रखता अपितु प्रकृति भी अपने अंगों को अलंकृत करने में सदैव उद्यत रहा करती है। प्रातःकाल जब सूर्योदय होता है तब प्रकृति पूर्व दिशा को किस प्रकार नूतन रंगों से रँग दिया करती है। ऐसा प्रतीत होने लगता है कि सुगाढ़ लालिमा के रंग से किसी ने प्राची दिशा को रँग डाला है। उपवन में उत्पन्न नाना भाँति के पुष्पों के रंगों एवं उनकी सज्जा को देख कर मानव-हृदय एक विचित्र प्रकार के हर्ष की अनुभूति किया करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति स्वयं अलंकरण की प्रेमी हुआ करती है तथा अपने अंगों एवं प्रत्यंगों को नाना प्रकार से सजाने में, नित्य नूतन रंगों से रंगीन बनाने में उसको महान् आनन्द आता है।

कवि प्रकृति का प्रेमी एवं पुजारी हुआ कहता है। अतः प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करने वाला वह एक भावुक व्यक्ति होता है। वह अपनी रचनाओं एवं कृतियों को अलंकारों से अलंकृत करने का प्रेमी तथा अभ्यासी होता है। वह जो कुछ भी लिखना चाहता है उसके सुन्दर बनाने के निमित्त वह नई-नई सामग्री एकत्रित करता तथा उसका ऐसा सरस एवं सालंकृत विन्यास करता है कि उसे देखते ही नेत्रों को विशेष आनन्द की उपलब्धि होती है और श्रवण करते ही श्रोताओं के श्रवण स्वतः उसकी ओर आकृष्ट हो जाया करते हैं। जिन साधनों के द्वारा काव्य का बाह्य-सौन्दर्य वृद्धि को प्राप्त हुआ करता है तथा

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हृदय को आकृष्ट करने की अद्भुत शक्ति से वह सम्पन्न होता है उनमें से अन्यतम साधन 'अलंकार' ही है।

अलंकार का रूप

अलंकार में जो वस्तु जीवन-शक्ति डालकर उसे सजीव तथा आकर्षक बनाती है वह है चमत्कार। अलंकार की अलंकारता बिना चमत्कार के मण्डित नहीं होती। अलंकार को ही दूसरे शब्दों में विचित्रता अथवा वैचित्र्य कहा जा सकता है। यह वैचित्र्य ही अलंकार है—'वैचित्र्यमलङ्कारः'। इस वैचित्र्य को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर देना अधिक उपयुक्त होगा। अपह्नुति नामक अलंकार में प्रकृत वस्तु का निरादर कर अप्रकृत वस्तु की स्थापना की जाती है। पूर्णिमा की रात्रि का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है—

नेदं नभोमण्डलमम्बुराशेर्नैताश्च तारा नवफेनभङ्गाः।
नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नायं कलङ्कः शयितो मुरारिः॥

अर्थात् यह आकाश नही प्रत्युत जल का एक विशाल समूह है। यह तारागण नहीं हैं अपितु फेन के नवीन टुकड़े हैं। यह चन्द्रमा नहीं है प्रत्युत कुण्डलाकार रूप में स्थित सर्प है। यह चन्द्रमा का कलंक नहीं है अपितु कृष्ण-वर्ण के भगवान् विष्णु ही उस पर शयन कर रहे हैं।

इस उद्धरण में वैचित्र्य होने के कारण ही उपर्युक्त अपह्नुति अलंकार-रूपा है। विचित्रता अथवा चमत्कारविहीन वाक्य में अलंकारता भी नहीं होती है।

अलंकार का लक्षण

'अलंकरोतीति अलंकारः' अथवा 'अलंक्रियते अनेन इति अलंकारः' यह अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति है। इसके अनुसार शरीर अथवा काव्य को विभूषित अथवा अलंकृत करने वाले अर्थ अथवा तत्व का नाम अलंकार है। आचार्य दण्डी ने अलंकार का लक्षण करते हुए लिखा है—

काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।

अर्थात् काव्य के सौन्दर्यकारक धर्मों को अलंकार कहते हैं। आचार्य वामन के शब्दों में 'सौन्दर्यमलंकारः' अर्थात् काव्य में सौन्दर्य के आधायकत्व का नाम ही अलंकार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

आचार्य मम्मट ने अलंकार का लक्षण करते हुए लिखा है—

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः ॥

अर्थात् जिस प्रकार कटक-कुण्डल आदि आभूषण शरीर को सुशोभित करने के कारण अलंकार कहलाते हैं उसी भाँति काव्य में अनुप्रास, उपमा आदि काव्य के शरीरभूत शब्द और अर्थ को अलंकृत करते हैं तथा अलंकार कहलाते हैं। किन्तु वे अलंकार को अलंकार्य का केवल उत्कर्षाधायक तत्व मानते हैं, स्वरूपाधायक अथवा जीवनाधायक तत्व नहीं। जो स्त्री या पुरुष अलंकारविहीन हैं वे भी मनुष्य हैं, पर जो अलंकारयुक्त हैं वह अधिक उत्कृष्ट समझे जाते हैं। इसी प्रकार काव्य में अलंकारों की स्थिति हुआ करती है। वे यदि हैं तो काव्य के उत्कर्षाधायक होंगे, यदि नहीं हैं तो भी काव्य की कोई हानि नहीं है। इसीलिए उन्होंने अलंकारों को काव्य का अस्थिर धर्म स्वीकार किया है और काव्य के लक्षण में 'अनलंकृती पुनः क्वापि' लिखकर अलंकाररहित को भी काव्य माना है। साहित्यदर्पण में भी अलंकार का लक्षण इसी आशय के साथ निम्न प्रकार किया गया है—

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माश्शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥

किन्तु अलङ्कारों को काव्य के अस्थिर धर्म मानने का सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं है। यह केवल ध्वनिवादी सम्प्रदाय का दृष्टिकोण है। अलङ्कार सम्प्रदाय अलंकारों को काव्य का अपरिहार्य स्थिर तत्व मानता है। उनके मत में अलंकाररहित काव्य की कल्पना उष्णतारहित अग्नि की कल्पना के समान है। इसी भाव को अभिव्यक्त करते हुए चन्द्रालोककार जयदेव ने लिखा है—

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थवानलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती ॥

अलङ्कार सम्प्रदाय द्वारा अलङ्कारों की मान्यता

अलंकार मत के प्रधान प्रवर्त्तक आचार्य भामह हैं तथा इसके पोषक हैं भामह के टीकाकार उद्भट तथा रुद्रट। दण्डी ने भी अलंकार को प्रधानता

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। इस प्रकार इस सम्प्रदाय के आचार्यों ने अलंकारों को काव्य का मुख्य तत्व स्वीकार किया है। इसका यह अर्थ नहीं कि वे काव्य के रस तत्व से अपरिचित थे। परन्तु इन्होंने इस तत्व को स्वतन्त्र स्थान प्रदान न कर अलंकार को ही एक प्रकार से स्वीकार किया है। रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वि और समाहित इन चारों अलंकारों के अभ्यन्तर रस तथा भाव के समग्र विषय को भामह द्वारा अन्तर्निविष्ट किया गया है। दण्डी ने भी रसवत् अलंकार का वर्णन किया है। उन्होंने आठ रस एवं आठ प्रकार के स्थायी भावों का भी निर्देश किया है। इस प्रकार अलङ्कार सम्प्रदाय के ये आचार्य रस तत्त्व से भली-भाँति परिचित हैं। किन्तु उसे अलङ्कार का एक प्रकार ही मानते हैं। वे प्रतीयमान अर्थ से भी परिचित हैं जिसे उन्होंने समासोक्ति, आक्षेप आदि अलंकारों के भीतर माना है। अलंकारों के विशिष्ट अनुशीलन तथा व्याख्या करने से वक्रोक्ति तथा ध्वनि की कल्पना प्रादुर्भूत हुई। इस प्रकार इस सम्प्रदाय के मत में अलङ्कार की महती विशेषता है।

अलंकारों के विभाजक-तत्त्व

प्राय: सभी आचार्यों ने शब्द और अर्थ को वाक्य का शरीर माना है। अलङ्कार शरीर के शोभाधायक होते हैं। अत: काव्य में शब्द और अर्थ के उत्कर्षाधायक तत्त्व का ही नाम अलंकार है अर्थात् अलङ्कार का आधार शब्द और अर्थ हैं। इसी आधार पर शब्दालङ्कार, अर्थालंकार और उन दोनों के मिश्रण से बने हुये उभयालंकार, इन तीन प्रकार के अलंकारों की कल्पना की गई है। अत: शब्द एवं अर्थ ही अलंकारों के विभाजक तत्त्व हुए।

शब्दालंकार

काव्य में जब शब्दों के प्रयोग में चमत्कार अथवा वैचित्र्य होता है तब वहाँ शब्दालंकार होता है यथा—

चारुचन्द्र की चञ्चल किरणें खेल रही थीं जल-थल में।

इस उद्धरण में आये हुए चारु, चन्द्र एवं चंचल शब्दों में चमत्कार है, सुनने में भी प्रिय लगते हैं। किन्तु यदि इन शब्द के स्थान पर इन्हीं के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

दूसरे पर्यायवाची शब्द 'सुन्दर', 'शशि', 'अस्थिर' आदि रख दिये जायें तो शब्दों में विद्यमान चमत्कार नष्ट हो जावेगा। अतः शब्दालङ्कार वहीं होता है जहाँ शब्दों के प्रयोगों में चमत्कार होता है तथा उनके पर्यावाची शब्दों के रखने से वह सौन्दर्य एवं चमत्कार नष्ट हो जाता है।

अर्थालङ्कार

जहाँ शब्दों के अर्थों में चमत्कार होता है तथा एक शब्द के स्थान पर दूसरा पर्यायवाची शब्द रख देने पर भी अर्थ के चमत्कार में कोई अन्तर नहीं पड़ता है वहाँ अर्थालंकार होता है। यथा—

नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।

इस उद्धरण में सरोरुह के स्थान पर पंकज आदि कोई पर्यायवाची शब्द तथा बारिज के स्थान पर नीरज आदि कोई शब्द रख देने पर भी अर्थ के चमत्कार में कोई अन्तर नहीं पड़ता है, अतः यहाँ अर्थालंकार है।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के अलंकारों का भेद

जहाँ शब्द का परिवर्तन करके उसका पर्यायवाचक दूसरा शब्द रख देने पर अलंकार नहीं रहता वहाँ यह समझना चाहिए कि उस अलंकार की स्थिति विशेष रूप से उस शब्द के कारण ही थी। अतः उसे शब्दालंकार कहा जाता है। जहाँ शब्द का परिवर्तन करके दूसरा पर्यायवाचक शब्द रख देने पर भी उस अलंकार की सत्ता बनी रहती है, वहाँ अलंकार शब्द के आश्रित नहीं, अपितु अर्थ के आश्रित होता है, इसलिये उसको अर्थालंकार कहा जाता है। इस प्रकार जो अलंकार शब्द-परिवृत्ति को सहन नहीं करता वह शब्दालंकार तथा जो शब्द-परिवृत्ति को सहन करता है वह अर्थालंकार होता है। यही शब्दालंकार तथा अर्थालंकार का भेद है।

अलंकारों की संख्या

अलंकारों की संख्या के विषय में संस्कृत-साहित्य में बड़ा मतभेद उपलब्ध होता है। भिन्न-भिन्न आचार्यों के मत में पृथक्-पृथक् संख्या पायी जाती है। आचार्य भरत अपने सर्वश्रुत ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में ४ प्रकार के अलंकारों को परिभाषित करते हैं—

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उपमा दीपकं चैव रूपकं यमकं तथा।
काव्यस्यैते ह्यलंकाराश्चत्वारः परिकीर्तिताः ॥

ना० शा० १६।४०

उन्होंने उपमा, दीपक, रूपक तथा यमक इन चार अलंकारों का वर्णन किया है।

काव्यालंकार के रचयिता भामह ने ३९ प्रकार के अलंकारों को स्वीकार किया है जिनको उन्होंने निम्न ४ भागों में विभक्त किया है—

(१) अनुप्रास, यमक, रूपक, दीपक तथा उपमा। इस वर्ग में उन्होंने भरत वर्णित अलंकारों के अतिरिक्त अनुप्रास का भी निर्वचन किया है। इसी वर्ग में उन्होंने प्रतिवस्तूपमा को उपमा के भेद के रूप में सन्निहित किया है। यदि इस अलंकार की गणना पृथक् रूप से की जाय तो इस वर्ग में ६ अलंकार माने जायेंगे।

(२) आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति तथा अतिशयोक्ति।

(३) यथासंख्य, उत्प्रेक्षा तथा स्वभावोक्ति।

(४) प्रेयस्, रसवत्, ऊर्जस्वि, पर्यायोक्ति, समाहित, उदात्त (द्विधा), श्लेष (त्रिधा), अपह्नुति, विशेषोक्ति, विशेष, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, उपमा, रूपक, उपमेयोपमा, सहोक्ति, परिवृत्ति, ससन्देह, अनन्वय, उत्प्रेक्षावयव, संसृष्टि, भाविक, आशीः।

आचार्य दण्डी ने अपने 'काव्यादर्श' में अनुप्रास और यमक के अतिरिक्त ३५ अर्थालकारों को स्वीकार किया है, वे निम्न हैं—

अर्थालङ्कार—स्वभावोक्ति, उपमा, रूपक, दीपक, आवृत्तिदीपक, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, हेतु, सूक्ष्म, लेश, यथासंख्य, प्रेयस्, रसवत्, ऊर्जस्वि, पर्यायोक्ति, समाधि, उदात्त, अपह्नुति श्लेष, विशेष, तुल्ययोगिता, विरोध, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, सहोक्ति, परिवृत्ति, आशीः, संसृष्टि, भाविक।

भट्ट उद्भट अलंकारशास्त्र के इतिहास में समादृत स्थान रखते हैं। उन्होंने भामह के 'काव्यालकारसूत्र' पर विवरण नामक टीका लिखी है। इनके

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ग्रन्थ काव्यालंकारसंग्रह अथवा अलंकारसारसंग्रह में प्रायः भामह का अनुकरण उपलब्ध होता है। इन्होंने अलंकारों का विभाजन विषयानुसार किया है जो इनकी नवीन कल्पना का द्योतक है। उन्होंने चालीस प्रकार के अलंकारों को स्वीकार किया है तथा उनका विभाजन निम्न ६ वर्गों में किया है—

१ वर्ग—पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, लाटानुप्रास, रूपक, दीपक, उपमा, प्रतिवस्तूपमा।

२ वर्ग—आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति, अतिशयोक्ति।

३ वर्ग—यथासंख्य, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति।

४ वर्ग—प्रेयस्वत्, रसवत्, ऊर्जस्वि, पर्यायोक्ति, समाहित, उदात्त, श्लिष्ट।

५ वर्ग—अपह्नुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुततप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, संकर, उपमेयोपमा, सहोक्ति, परिवृत्ति।

६ वर्ग—ससन्देह, अनन्वय, संसृष्टि, भाविक, काव्यहेतु, काव्यदृष्टान्त।

आचार्य वामन ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' में निम्न ३३ प्रकार के अलंकारों का वर्णन किया है—

अनुप्रास, यमक, उपमा, प्रतिवस्तूपमा, समासोक्ति, अप्रस्तुतप्रशंसा, अपह्नुति, रूपक, श्लेष, वक्रोक्ति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, सन्देह, विरोध, विभावना, अनन्वय, उपमेयोपमा परिवृत्ति, क्रम (यथासंख्य), दीपक, निदर्शना, अर्थान्तर न्यास, व्यतिरेक, विशेषोक्ति, व्याजस्तुति, व्याजोक्ति, तुल्ययोगिता, आक्षेप, सहोक्ति, समाहित, संसृष्टि, रूपक, उत्प्रेक्षावयव।

इसी प्रकार रुद्रट ने अपने 'काव्यालंकार' में ५२ तथा काव्यप्रकाशकार मम्मट ने ६७ प्रकार के अलंकारों के भेद का वर्णन किया है। जयदेव ने अपने 'चन्द्रालोक' में अलंकारों के १०० भेदों को स्वीकार किया है जिनका विवरण निम्न भाँति है—

शब्दालंकार—अनुप्रास, छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, लाटानुप्रास, स्फुटानुप्रास, अर्थानुप्रास, पुनरुक्तप्रतीकाश, यमक, चित्रालंकार।

अर्थालंकार—उपमा, पूर्णोपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीपोपमा,

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

ललितोपमा, स्तबकोपमा, रूपक, (सोपाधिरूपक, सादृश्यरूपक, अभास-रूपक, रूपितरूपक) परिणाम, उल्लेख, अपह्नुति (पर्यस्तापह्नुति, भ्रान्ता-पह्नुति, छेकापह्नुति, कैतवापह्नुति), उत्प्रेक्षा (गूढोत्प्रेक्षा आदि), स्मृति, भ्रान्ति, सन्देह, मीलित, सामान्य, उन्मीलित, अनुमान, अर्थापत्ति, काव्यलिङ्ग परिकर, परिकरांकुर अतिशयोक्ति, (अक्रमातिशयोक्ति, अत्यन्तातिशयोक्ति, चपलातिशयोक्ति, सम्बन्धातिशयोक्ति, भेदकातिशयोक्ति, रूपकातिशयोक्ति), प्रौढोक्ति, सम्भावना, प्रहर्षण, विषादन, तुल्ययोगिता, दीपक (आवृत्तिदीपक) प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, श्लेष (खण्डश्लेष, भङ्गश्लेष अर्थश्लेष), अप्रस्तुतप्रशंसा, अर्थान्तरन्यास, विकस्वर, पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति, आक्षेप (गूढाक्षेप), विरोध, विरोधाभास असम्भव, विभावना, विशेषोक्ति, असंगति, विषम, सम, विचित्र, अधिक, अन्योन्य, विशेष, व्याघात, कारणमाला, एकावली, मालादीपक, सार, उदारसार, यथासंख्य, पर्याय, परिवृत्ति, परिसंख्या, विकल्प, समुच्चय, समाधि, प्रत्यनीक, प्रतीप, उल्लास, तद्गुण, पूर्वरूप, अतद्गुण, अनुगुण, अवज्ञा, प्रश्नोत्तर, पिहित, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, भाविक, भाविकच्छवि, उदात्त, अत्युक्ति, रसवत्, प्रेयस्, ऊर्जस्वि, समाहित, भावोदय, भावसन्धि, भावशबलता, संसृष्टि, संकर ।

चन्द्रालोक के व्याख्याकार अप्पय दीक्षित ने कुवलयानन्द में उसको बढ़ाकर १२४ तक पहुँचा दिया है ।

उपर्युक्त आचार्यों के अलंकार-गणना सम्बन्धी सिद्धान्तों को काव्यप्रकाश-टीकाकार आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त-शिरोमणि ने निम्न श्लोकों में निम्न भाँति किया है—

उपमा रूपकं चैव दीपको यमकस्तथा ।
चत्वार एवालङ्कारा भरतेन निरूपिताः ॥ १ ॥
वामनेन त्रयस्त्रिंशद् भेदास्तस्य निरूपिताः ।
पंचत्रिंशद्विधश्चायं दण्डिना प्रतिपादितः ॥ २ ॥
नवत्रिंशद्विधश्चायं भामहेन प्रकीर्तितः ।
चत्वारिंशद्विधश्चैव उद्भटेन प्रदर्शितः ॥ ३ ॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

द्विपञ्चाशद्विधः प्रोक्तो रुद्रटेन ततः परम् ।
सप्तषष्टिविधः प्रोक्तः प्रकाशे मम्मटेन च ॥ ४ ॥
शतधा जयदेवेन विभक्तो दीक्षितेन च ।
चतुर्विंशतिभेदास्तु कृता एकशतोत्तराः ॥ ५ ॥

इसी प्रकार आचार्य विश्वनाथ ने अपने 'साहित्यदर्पण' में कुल ८६ तथा पंडितराज जगन्नाथ ने 'रसगङ्गाधर' में ७० अलंकारों का पाण्डित्यपूर्ण विवेचन किया है।

आचार्यों द्वारा विवेचन किये हुये अलंकारों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अलंकार शब्द तथा अर्थ का अनित्य धर्म है। अतः शब्द तथा अर्थगत दोनों ही प्रकार के अलंकार पृथक्-पृथक् होते हैं। कुल अलंकार शब्द तथा अर्थ दोनों से सम्बद्ध होते हैं। इस प्रकार अलंकारों के तीन प्रकार होते हैं—शब्दगत, अर्थगत तथा शब्दार्थगत।

अलंकार सम्प्रदाय में आचार्य भामह, उद्भट, दण्डी, रुद्रट तथा जयदेव आदि हैं। मम्मट, रुय्यक आदि ध्वनिवादी हैं, परन्तु फिर भी उन्होंने अलंकारों का अच्छा विवेचन प्रस्तुत किया है।

चन्द्रालोककार जयदेव

काल

ग्यारहवीं शती में आचार्य हेमचन्द्र से लेकर १४ वीं शती में देवेश्वर पर्यन्त लगभग २५० वर्ष तक जब उधर गुजरात का अनहिलबाड़ा राज्य जैन विद्वानों और साहित्यकारों का केन्द्र बन रहा था, उसी समय बंग देश ब्राह्मण विद्वानों, कवियों और साहित्यकारों का केन्द्र बना हुआ था। इस काल में गुजरात में आचार्य हेमचन्द्र सदृश विद्वान् तथा रामचन्द्र सदृश कवि उत्पन्न हुए और बङ्ग देश में जयदेव और गोवर्धनाचार्य सदृश सुकवियों और पण्डितों की उत्पत्ति हुई। बङ्गदेश में बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन राज्य करते थे। इन लक्ष्मणसेन की राजसभा में (१) आर्यासप्तशतीकार गोवर्धनाचार्य, (२) जयदेव, (३) शरण कवि, (४) उमापति तथा (५) कविराज ये पाँच प्रमुख सभापण्डित थे। राजा लक्ष्मणसेन के सभाभवन के द्वार पर इन पाँचों के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

नाम शिलापट्ट पर एक श्लोक के रूप में अङ्कित थे। वह श्लोक इस प्रकार है—

गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य तु ॥

इसमें से गोवर्धनाचार्य 'आर्याशप्तशती' के रचयिता के रूप में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। जयदेव 'गीतगोविन्द' आदि अनेक ग्रन्थों के रचयिता हैं। कविराज पद संभवतः किसी कवि के लिये प्रयुक्त हुआ है। जयदेव कवि ने अपने 'गीत-गोविन्द' में अपने सभी साथी कवियों का उल्लेख निम्न भाँति किया है—

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां,
जानीते जयदेव एव शरणः श्लाघ्यो दुरूहद्रुतेः।
शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन-
स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरः धोयीकविक्ष्मापतिः ॥
—गीतगोविन्त १।४ ॥

इसमें जयदेव ने उमापति, जयदेव, शरण, गोवर्धनाचार्य तथा धोयी कविराज सभी का नाम ग्रहण करके उनकी विशेषताओं का उल्लेख किया है।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि जयदेव राजालक्ष्मणसेन की राज्य सभा में थे। राजा लक्ष्मणसेन का समय इतिहासकारों ने १२ वीं शताब्दी स्वीकार[1] किया है। अतः जयदेव का समय यही माना जा सकता है।

संक्षिप्त-जीवन

जयदेव-रचित ग्रन्थों में (१) चन्द्रालोक, (२) प्रसन्नराघव नाटक और (३) गीतगोविन्द ये तीन ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें से 'गीतगोविन्द' में उन्होंने अपने आश्रयदाता लक्ष्मणसेन तथा अपने सहयोगी पंचरत्नों का परिचय दिया है। 'चन्द्रालोक' तथा 'प्रसन्नराघव' नाटक में अपने माता-पिता का परिचय दिया है। उनके पिता का नाम महादेव तथा माता का नाम सुमित्रा था। चन्द्रालोक के प्रत्येक मयूख के अन्त में—

1. R. C. Mazumdar. JPASB. 1921, P.P 7ff. (1175-1200), Aboce P. 67. N. 1.

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

महादेवः सत्रप्रमुखमखविद्यैकचतुरः
सुमित्रा तद्भक्तिप्रणिहितमतिर्यस्य पितरौ ।

लिखकर अपनी माता सुमित्रा तथा अपने पिता महादेव के नाम का कीर्तन किया है। इसी प्रकार 'प्रसन्नराघव' नाटक की प्रस्तावना में भी जयदेव ने इन दोनों का परिचय निम्नलिखित प्रकार से दिया है—

विलासो यद्वाचामसमसरनिष्यन्दमधुरः,
कुरंगाक्षीबिम्बाधरमधुरभावं गमयति ।
कवीन्द्रः कौण्डिन्यः स तव जयदेवश्रवणयोः,
अभासीदातिथ्यं न किमिह महादेवतनयः ॥
लक्ष्मणस्येव यस्यास्य सुमित्राकुक्षिजन्मनः ।
रामचन्द्रपदाम्भोजे भ्रमद् भृंगायते मनः ॥

माता-पिता के उपर्युक्त परिचय से स्पष्ट प्रतीत होता है कि चन्द्रालोक तथा प्रसन्नराघव नाटक के रचयिता एक ही व्यक्ति हैं।

गीतगोविन्दकार जयदेव

किन्तु 'गीतगोविन्द' के बारह सर्ग का ग्यारहवाँ श्लोक निम्न भाँति उपलब्ध होता है—

श्रीभोजदेवप्रभवस्य रामादेवी-सुतश्रीजयदेवकस्य ।
पाराशरादिप्रियवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु ॥

इस श्लोक में जयदेव को भोजदेव और रामादेवी का पुत्र कहा गया है। इस कारण अधिकांश विद्वान् गीतगोविन्दकार जयदेव को चन्द्रालोक तथा प्रसन्नराघव के रचयिता जयदेव से भिन्न स्वीकार करते हैं। इन गीतगोविन्दकार जयदेव के विषय में श्री चन्द्रदत्त नामक किसी कवि ने संस्कृत के 'भक्तमाला' नामक अपने ग्रन्थ में (३९-४१ तीन सर्गों में २४१ श्लोकों में) विस्तार के साथ परिचय दिया है। किन्तु उसमें इनके माता-पिता के नाम का कोई उल्लेख नहीं किया है। इस परिचय में चन्द्रदत्त ने उत्कल में जगन्नाथ-पुरी के पास 'विन्दुबिल्व' नामक ग्राम को जयदेव की जन्मभूमि स्वीकार करते हुए लिखा है—

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जगन्नाथपुरी प्रान्ते देशे चैवोत्कलाभिधे।
बिन्दुबिल्व इति ख्यातो ग्रामो ब्राह्मणसंकुलः॥
उत्कले द्विजो जातो जयदेव इति श्रुतः।

चन्द्रालोक एवं गीतगोविन्द में दिये हुये माता-पिता के उपर्युक्त नामों भेद से यह प्रतीत होता है कि गीतगोविन्दकार जयदेव चन्द्रालोककार ह प्रसन्नराघवकार जयदेव से भिन्न हैं। इसी आधार पर अधिकांश विद्वानों ने जयदेवों को पृथक्-पृथक् रूप से स्वीकार किया है।

परन्तु इस प्रकार का विचार कुछ उचित प्रतीत नहीं होता है। चन्द्रालो कार जयदेव को गीतगोविन्दकार जयदेव से भिन्न मानने का मुख्य आध 'गीतगोविन्द' में आया हुआ उपरिलिखित 'श्रीभोजदेवप्रभवस्य' इत्य श्लोक ही है। किन्तु यह श्लोक प्रक्षिप्त प्रतीत होता है क्योंकि कुम्भनृपति 'रसिकप्रिया' नामक 'गीतगोविन्द' की टीका में उपर्युक्त श्लोक की टी उपलब्ध नहीं होती। निर्णयसागर प्रेस बम्बई से जो रसिकप्रिया नामक टी सहित 'गीतगोविन्द' प्रकाशित हुआ है उसमें इस स्थल पर सम्पादक महोद कोष्ठक में—'अत्र श्रीभोजदेवेति श्लोकस्य टीका नोपलब्धा टीकाद पुस्तके' पद लिख दिया है। इससे प्रतीत होता है कि उपर्युक्त श्लोक बाद बढ़ाया गया हुआ श्लोक है और प्रामाणिक नहीं है।

उपर्युक्त विचार के समर्थन में दूसरी युक्ति यह भी है कि यदि हम श्लोक के आधार पर गीतगोविन्दकार जयदेव को चन्द्रालोककार जयदेव से भि मानना चाहें तो फिर चन्द्रदत्तकृत 'भक्तमाल' के विवरण के अनुसार उत्कल निवासी जयदेव के रूप में मानना होगा। ऐसी अवस्था में गीतगो के प्रथम सर्ग में वर्णित राजा लक्ष्मणसेन की राजसभा के पंचरत्नों का उल्ल करने वाले श्लोक को संगति कैसे लग सकेगी? गीतगोविन्द का यह श्ल पूर्णरूपेण प्रामाणिक श्लोक है। इस बारे में किसी को भी मतभेद नहीं अतः इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गीतगोविन्दकार जयदेव बंगदेशीय र लक्ष्मणसेन की सभा के पंचरत्नों में से नहीं हैं तथा वे चन्द्रालोक एवं प्रस राघवकार जयदेव से भिन्न नहीं हैं।

चन्द्रालोककार जयदेव से गीतगोविन्दकार जयदेव को भिन्न मानने

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मुख्य आधार 'श्रीभोजदेव' इत्यादि श्लोक ही है। वह अप्रामाणिक है। इस बात का विवेचन अभी किया जा चुका है। इसका अन्य आधार चन्द्रदत्तकृत भक्तमाल में दिया हुआ जयदेव का वर्णन है। यह वर्णन स्पष्ट रूप से गीत-गोविन्दकार से ही सम्बन्धित है किन्तु उसमें जयदेव के माता-पिता का कोई भी वर्णन उपलब्ध नहीं होता है। केवल उत्कल देश में उनके जन्म की और जगन्नाथपुरी तथा उत्कल से सम्बद्ध गीतगोविन्द के माहात्म्य की प्रदर्शक कथाओं का वर्णन है। किन्तु इससे गीतगोविन्दकार जयदेव को चन्द्रालोककार जयदेव से भिन्न मानने का समर्थन नहीं होता है। यह सम्भव है कि जयदेव का जन्म उत्कल के विन्दुविल्व ग्राम में ही हुआ हो तथा उनका विवाह भी पद्मावती के साथ हुआ हो। किन्तु बाद में वे वङ्गदेशीय राजा लक्ष्मणसेन की राजसभा के रत्न बन गये हों। यह भी कल्पना की जा सकती है कि उन्होंने गीतगोविन्द की रचना उत्कल में रहते हुए ही कर ली हो जिससे उत्कल तथा जगन्नाथपुरी के मन्दिर में 'गीतगोविन्द' का विशेष प्रचार हो गया हो। किन्तु उससे भी इस बात का समर्थन नहीं होता है कि वे 'चन्द्रालोक' तथा प्रसन्न-राघव के रचयिता नहीं थे और न इससे यही सिद्ध होता है कि वे राजा लक्ष्मण-सेन की सभा के रत्नों में नहीं रहे होंगे। यदि भक्तमाल वाली कथा इस बात में बाधा उपस्थित करती है कि 'गीतगोविन्द' के रचयिता जयदेव राजा लक्ष्मणसेन की सभा के रत्न थे तो वह कथा भी अप्रामाणिक ही माननी होगी क्योंकि गीतगोविन्दकार जयदेव ने स्वयं ही लक्ष्मणसेन की सभा के रत्नों में अपना नामोल्लेख किया है।

अतः उपर्युक्त विवेचन के आधार पर भी यही सिद्ध होता है कि गीत-गोविन्दकार जयदेव चन्द्रालोककार जयदेव से भिन्न नहीं हैं।

जयदेव के नाम से निम्न तीन ग्रन्थ विशेष रूप से प्रसिद्ध उपलब्ध होते हैं—

(१) चन्द्रालोक, (२) प्रसन्नराघव नाटक, (३) गीतगोविन्द।

चन्द्रालोक में दश मयूख हैं उनमें क्रमशः प्रथम वाग्विचार, २—दोष-निरूपण, ३—लक्षणनिरूपण, ४—गुणनिरूपण, ५—अलंकारनिरूपण, ६—रस-भावरीतिवृत्तिनिरूपण, ७—शब्दशक्तिनिरूपण, ८—गुणीभूतव्यङ्गनिरूपण,

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

९—लक्षणानिरूपण, १०—अभिधानिरूपण का प्रतिपादन हुआ है। यह ग्रन्थ बड़ी सरल तथा सुन्दर शैली में लिखा गया है अलंकारों के निरूपण में इनकी महती विशेषता यह है कि इन्होंने अनुष्टुप् श्लोक में पूर्वार्ध में प्रत्येक अलंकार का लक्षण और आधे श्लोक में उसका उदाहरण दे दिया है। इससे अलंकारों को भली भाँति समझने तथा स्मरण करने में बड़ी सरलता होती है। इसी कारण यह ग्रन्थ अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। 'कुवलयानन्द' के रचयिता अप्पय दीक्षित ने चन्द्रालोक के इसी अलंकार प्रकरण के आधार पर अपने ग्रन्थ 'कुवलयानन्द' की रचना की है।

समीक्षा

ध्वनि सम्प्रदाय के उत्थान के अनन्तर अलंकारों का काव्यधर्म में स्थान नगण्य-सा हो गया था। आचार्य जयदेव ने अलंकारों की अनिवार्यता पर बल दिया और भामह, दण्डिन्, रुद्रट के मतवाद की पुनः स्थापना की। उन्होंने काव्य का लक्षण निम्न प्रकार किया है—

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।
सालंकाररसानेकवृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक्॥

निर्दोषा, लक्षण, रीति, गुण, अलंकार, रस एवं अनेक वृत्तियों से समन्वित वाणी काव्य का व्यपदेश धारण करती है। श्रीयुत् मम्मट के काव्यलक्षण में आये हुए 'अनलंकृती पुनः क्वापि' की उन्होंने सोपहास आलोचना करते हुए लिखा है—

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृति।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती॥

अर्थात् जो कृती अलंकारविहीन शब्द तथा अर्थ को काव्य के रूप में स्वीकार करता है वह अग्नि को उष्णतारहित क्यों नहीं स्वीकार करता अग्नि में यदि दाहकता शक्ति न रहे तो उसका अग्नित्व ही नष्ट हो जायगा इसी प्रकार अलंकारविहीन काव्य में काव्यत्व के दर्शन करना दुराग्रह मात्र है। इस प्रकार उन्होंने काव्य में अलंकारों की हेयता को स्वीकार नहीं किया है

दोषों के विवेचन प्रसंग में उन्होंने मम्मट की सरणि का अनुसरण किया है। दोष भी कभी गुण के आधायक बन जाया करते हैं, इस तत्व को

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उन्होंने दोषांकुश के नाम से व्यपदिष्ट किया है। इसमें भी काव्यप्रकाश का अनुगमन दृष्टिगोचर होता है।

जयदेव के अतिरिक्त किसी अन्य आचार्य के काव्य-लक्षण में लक्षण का समावेश उपलब्ध नहीं होता है। काव्य में लक्षण की अनिवार्यता का प्रतिपादन करने के पश्चात् ही उसका निर्वचन करना आवश्क था। इसी कारण उन्होंने काव्यलक्षण में लक्षण को भी स्थान प्रदान किया है।

भरत की परिभाषाओं को अपेक्षा जयदेव के लक्षणों की परिभाषायें अधिक समीचीन प्रतीत होती हैं। उनकी परिभाषाओं तथा उदाहरणों पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि उनके लक्षण अलङ्कारों से दविष्ठ नहीं हो सके हैं।

गुणों के निरूपण में जयदेव ने अपने चन्द्रालोक में भरत, वामन आदि प्राचीन आचार्यों का ही अनुकरण किया है, भामह आदि का नहीं। प्राचीन आचार्यों ने दश गुण माने हैं तथा भामह आदि ने तीन। अतः जयदेव ने भी अपने उक्त ग्रन्थ में १० गुणों का ही वर्णन किया है।

उन्होंने चन्द्रालोक के पंचम मयूख में अलङ्कारों का वर्णन किया है। प्रायः एक ही श्लोक की प्रथम पंक्ति में अलङ्कार का लक्षण तथा दूसरी ही पंक्ति में उसका उदाहरण भी दे दिया है। लक्षण के आधार पर ही उदाहरण का होना तथा वह भी इतने सरल शब्दों में कि जिसके समझने में कोई किसी भी प्रकार की कठिनाई उपथित नहीं होती है, यह उनकी अपनी निजी विशेषता है।

सुरेन्द्रदेव शास्त्री

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

परिचय

अचार्य सीताराम चतुर्वेदी

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत, पालि तथा प्रत्न भारतीय इतिहास),
बी० टी०, एल्–एल्० बी०, साहित्याचार्य,
प्राचार्य : टाउन डिग्री कालेज, बलिया

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि हमारे महाविद्यालय के वरिष्ठ प्राध्यापक डा० सुरेन्द्रदेव शास्त्री ने गोरखपुर विश्वविद्यालय की B. A. परीक्षा में संस्कृत पाठ्यक्रम के अन्तर्गत निर्धारित चन्द्रालोक के पंचम मयूख का ऐसा विशद विवेचन प्रस्तुत किया है कि छात्रों को ही नहीं वरन् संस्कृत के कवियों और पण्डितों को भी उससे पूर्ण मार्गनिर्देशन प्राप्त होगा। शास्त्री जी ने प्रत्येक अलङ्कार का साम्वय लक्षण देकर उसकी व्याख्या करके उसके उदाहरण का स्पष्ट और विशद विश्लेषण कर दिया है जिससे किसी भी व्यक्ति को किसी भी अलङ्कार के स्वरूप को समझने में कोई कठिनाई न होगी। जहाँ कहीं अलङ्कार में भ्रम होने की संभावना है वहाँ उदाहरण देकर तथा व्याख्या करके उस अन्तर तथा भ्रम को दूर करके स्पष्ट कर दिया गया है।

इसके अतिरिक्त श्री शास्त्री जी ने इस ग्रन्थ की विस्तृत भूमिका लिखकर उसमें यह स्पष्ट किया है कि काव्य के लिये जितनी महत्ता रस की है उतनी ही महत्ता अलङ्कार की भी है।

यद्यपि साहित्य के अध्येता को रस की दृष्टि से ही काव्य के पूर्ण परिपाक का आस्वादन करना चाहिये अथवा ध्वनिवादियों के सिद्धान्त के अनुसार ध्वनि का आनन्द लेने की प्रवृत्ति बढ़ानी चाहिये तथापि सभी कवियों ने समान रूप

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

से अपने काव्यों में किसी न किसी रूप में अलंकार के माध्यम से अपने वर्ण्य विषय को अधिक ग्राह्य बनाने के लिए प्रदीप्त किया है। कहीं कहीं तो अलंकार ही इतना व्यंग्य होता है कि जब तक उस अलंकार के लक्षण और उसकी प्रकृति का परिज्ञान न हो तो तब तक उस रचना का आस्वादन ही नहीं किया जा सकता है। यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र के अनेक आचार्यों ने अलंकार के सम्बन्ध में अनेक ग्रन्थों की रचना की है तथापि जितनी विशदता, स्पष्टता और सरलता के साथ जयदेव ने अपने चन्द्रालोक में अलंकारों का विवेचन किया है उतनी विशदता, स्पष्टता और सरलता के साथ किसी आचार्य की रचना प्राप्त नहीं होती। इसीलिये प्रायः सभी अध्यापक और संस्कृत काव्य-शास्त्र के मर्मज्ञ चन्द्रालोक का ही आश्रय लेते हैं क्योंकि इसमें एक ही श्लोक में लक्षण और उदाहरण देकर प्रत्येक अलंकार स्पष्ट कर दिया गया है जिससे एक श्लोक को कण्ठाग्र कर लेने से ही उसमें निर्दिष्ट अलंकार का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ का सरल विवेचन छात्रों के लिये निश्चय ही उपादेय है और मुझे विश्वास है कि गोरखपुर विश्वविद्यालय के ही नहीं वरन् सभी विश्वविद्यालयों के संस्कृत के छात्र और अध्यापक इस ग्रन्थ से लाभ उठावेंगे।

मैं शास्त्रीजी को इस सत्प्रयास के लिये बधाई देता हूँ।

—सीताराम चतुर्वेदी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विषय-सूची

विषय	पृ०
अलंकार की परिभाषा	१
अलंकार का सामान्य लक्षण	१
अलंकार के भेद	२
शब्दालंकार की परिभाषा सोदाहरण	२
अर्थालंकार की परिभाषा सोदाहरण	३
महाकवि जयदेव द्वारा स्वीकृत शब्दालङ्कारों की सूची	३
अनुप्रास का सामान्य लक्षण	३
अनुप्रास के भेद	३
छेकानुप्रास का सोदाहरण लक्षण	३
वृत्यनुप्रास का ,,	४
लाटानुप्रास का ,,	५
स्फुटानुप्रास का ,,	५
अर्थानुप्रास का ,,	६
पुनरुक्तप्रतीकाश का ,,	७
यमक का ,,	८
चित्रालङ्कार का ,,	९
अर्थालङ्कार	
उपमा का सोदाहरण लक्षण	११
उपमा के चार अङ्ग और उनकी परिभाषा	११
पूर्णोपमालंकार की परिभाषा	१२
लुप्तोपमालंकार की परिभाषा	१२

विषय	पृ०
अनन्वय का सोदाहरण लक्षण	१
उपमेयोपमा का ,,	१
प्रतीपोपमा का ,,	१
ललितोपमा का ,,	१
स्तवकोपमा का ,,	१
सम्पूर्णोपमा का ,,	१
रूपक का ,,	१
सोपाधिरूपक का ,,	१
सादृश्यरूपक का ,,	१
आभासरूपक का ,,	१
रूपप्रतिरूपक का ,,	१
परिणाम का ,,	१
उल्लेख का ,,	२
उल्लेख अङ्कार के दो प्रकार	२
अपह्नुति का सोदाहरण लक्षण	२
अपह्नुति के भेद	२
पर्यस्तापह्नुति का सोदाहरण लक्षण	२
भ्रान्तापह्नुति का ,,	२
छेकापह्नुति का ,,	२
कैतवापह्नुति ,,	२
उत्प्रेक्षा का ,,	२
उत्प्रेक्षा के भेद	२
हेतूत्प्रेक्षा	२

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विषय		पृ०
फलोत्प्रेक्षा		२५
वस्तूत्प्रेक्षा		२५
गूढोत्प्रेक्षा का सोदाहरण लक्षण		२५
स्मृति, भ्रान्ति तथा सन्देह अलङ्कारों के सोदाहरण लक्षण		२७
मीलित का सोदाहरण लक्षण		२८
सामान्य	,,	२९
उन्मीलित	,,	३०
अनुमान	,,	३१
अर्थापत्ति	,,	३१
काव्यलिङ्ग	,,	३१
परिकर	,,	३२
परिकरांकुर	,,	३३
अतिशयोक्ति की परिभाषा		३३
,, के भेद		३३
अक्रमातिशयोक्ति का सोदाहरण लक्षण		३४
अत्यन्तातिशयोक्ति	,,	३४
चपलातिशयोक्ति	,,	३५
सम्बन्धाशियोक्ति	,,	३५
भेदकातिशयोक्ति	,,	३६
रूपकातिशोक्ति	,,	३६
प्रौढोक्ति	,,	३७
संभावना	,,	३७
प्रहर्षण	,,	३८
विषादन	,,	३९

विषय		पृ०
तुल्ययोगिता का सोदाहरण लक्षण		३९
दीपक	,,	४०
आवृत्तिदीपक	,,	४१
प्रतिवस्तूपमा	,,	४१
दृष्टान्त	,,	४२
निदर्शना	,,	४४
व्यतिरेक	,,	४६
सहोक्ति	,,	४७
विनोक्ति	,,	४७
समासोक्ति	,,	४८
खण्डश्लेष	,,	४८
भङ्गश्लेष	,,	४९
अर्थश्लेष	,,	५०
अप्रस्तुतप्रशंसा	,,	५१
अर्थान्तरन्यास	,,	५३
विकस्वर	,,	५४
पर्यायोक्ति	,,	५५
व्याजस्तुति	,,	५६
आक्षेप	,,	५७
गूढाक्षेप	,,	५८
विरोध	,,	५८
विरोधाभास	,,	५९
असंभव	,,	६०
विभावना	,,	६०
विशेषोक्ति	,,	६१
असंगति	,,	६२

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विषय		पृ०
विषम का सोदाहरण लक्षण		६४
सम	,,	६५
विचित्र	,,	६५
अधिक	,,	६६
अन्योन्य	,,	६७
विशेष	,,	६७
व्याघात	,,	६८
कारणमाला	,,	६८
एकावली	,,	६९
मालादीपक	,,	७०
सार	,,	७१
उदारसार	,,	७१
यथासंख्य	,,	७२
पर्याय	,,	७२
परिवृत्ति	,,	७३
परिसंख्या	,,	७३
विकल्प	,,	७४
समुच्चय	,,	७५
समाधि	,,	७५
प्रत्यनीक	,,	७६
प्रतीप	,,	७७
उल्लास	,,	७७
तद्गुण	,,	७८
पूर्वरूप (प्रथम)	,,	७९
पूर्वरूप (द्वितीय)	,,	८०

विषय		पृ०
अतद्गुण का सोदाहरण लक्षण		८१
अनुगुण	,,	८१
अवज्ञा	,,	८२
प्रश्नोत्तर	,,	८२
पिहित	,,	८३
व्याजोक्ति	,,	८४
वक्रोक्ति	,,	८६
स्वभावोक्ति	,,	८७
भाविक	,,	८७
भाविकच्छवि	,,	८८
उदात्त	,,	८८
अत्युक्ति	,,	८९
रसवदादि अलङ्कार		८९
शुद्धि एकप्रधानत्व एवं संसृष्टि और संकर अलङ्कारों का वर्णन— रसवदादि एवं शुद्धि आदि अलङ्कारों के बारे में तथा अन्य अलङ्कारों के बारे में महाकवि जयदेव का मत		९१
सभी अलङ्कारों में अतिशयोक्ति का होना तथा एकमात्र अतिशयोक्ति अलङ्कार		९२
एकमात्र अतिशयोक्ति अलङ्कार के स्वीकार करने में महाकवि जयदेव का अपना मत		९३
कवि परिचय तथा उपसंहार		९५

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विभिन्न अलङ्कारों के अन्तरों की सूची

		पृष्ठ
१	छेकानुप्रास तथा वृत्यानुप्रास में अन्तर	४
२	लाटानुप्रास तथा पुनरुक्तप्रतीकाश में अन्तर	७
३	लाटानुप्रास तथा यमक में अन्तर	८
४	पुनरुक्तप्रतीकाश तथा यमक में अन्तर	९
५	उपमा एवं अनन्वय अलङ्कारों में अन्तर	१३
६	उपमा और उपमेयोपमा अलङ्कारों में अन्तर	१४
७	रूपक तथा उपमा अलङ्कारों में अन्तर	१९
८	रूपक तथा परिणाम अलङ्कारों में अन्तर	२०
९	अपह्नुति और रूपक अलङ्कारों में अन्तर	२१
१०	उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा में अन्तर	२६
११	भ्रान्ति तथा उत्प्रेक्षा अलङ्कारों में अन्तर	२८
१२	भ्रान्ति तथा मीलित ,, ,,	२९
१३	मीलित और सामान्य ,, ,,	३०
१४	काव्यलिङ्ग और अनुमान ,, ,,	३२
१५	परिकर और परिकरांकुर ,, ,,	३३
१६	दीपक और तुल्ययोगिता ,, ,,	४०
१७	प्रतिवस्तूपमा और उपमा ,, ,,	४२
१८	प्रतिवस्तूपमा और आवृत्तिदीपक ,, ,,	४२
१९	दृष्टान्त उपमा ,, ,,	४४
२०	दृष्टान्त और प्रतिवस्तूपमा ,, ,,	४४
२१	निदर्शन और रूपक ,, ,,	४५
२२	निदर्शना और प्रतिवस्तूपमा ,, ,,	४५
२३	निदर्शना और दृष्टान्त ,, ,,	४६
२४	समासोक्ति और रूपक ,, ,,	४८
२५	खण्डश्लेष और भङ्गश्लेष ,, ,,	५०
२६	श्लेष और समासोक्ति ,, ,,	५०

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

२७ अप्रस्तुतप्रशंसा और समासोक्ति अलंकारों में अन्तर ५२
२८ अप्रस्तुतप्रशंसा और श्लेष ,, ,, ५२
२९ अप्रस्तुतप्रशंसा और दृष्टान्त ,, ,, ५३
३० अर्थान्तरन्यास और निदर्शना ,, ,, ५३
३१ अर्थान्तरन्यास और प्रतिवस्तूपमा ,, ,, ५४
३२ अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त ,, ,, ५४
३३ अर्थान्तरन्यास और काव्यलिङ्ग ,, ,, ५४
३४ पर्यायोक्ति तथा अप्रस्तुत ,, ,, ५६
३५ व्याजस्तुति तथा पर्यायोक्ति ,, ,, ५६
३६ व्याजस्तुति तथा अप्रस्तुतप्रशंसा ,, ,, ५७
३७ विरोध तथा विरोधाभास ,, ,, ६०
३८ विशेषोक्ति विभावना ,, ,, ६१
३९ विशेषोक्ति, विभावना, विरोध तथा विरोधाभास अलंकारों में अन्तर ६२
४० असंगति तथा विशेषोक्ति अलंकारों में अन्तर ६३
४१ असंगति तथा विभावना ,, ,, ६३
४२ असंगति तथा विरोध ,, ,, ६४
४३ विषम, विरोध और असंगति ,, ,, ६५
४४ अधिक और विषम ,, ,, ६६
४५ एकावली और कारणमाला ,, ,, ७०
४६ मालादीपक और एकावली ,, ,, ७०
४७ सम तथा समुच्चय ,, ,, ७५
४८ प्रतीप एवं व्यतिरेक ,, ,, ७७
४९ तद्गुण और मीलित ,, ,, ७९
५० अतद्गुण और तद्गुण ,, ,, ८१
५१ अनुमान और प्रश्नोत्तर ,, ,, ८३
५२ व्योजोक्ति तथा अपह्नुति ,, ,, ८५
५३ छेकापह्नुति और व्योजोक्ति ,, ,, ८६
५४ वक्रोक्ति तथा अपह्नुति ,, ,, ८७

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

।श्रीः॥

चन्द्रालोक-पञ्चममयूखः

सविमर्श-हिन्दीव्याख्योपेतः

अथ अलङ्काराः

शब्दार्थयोः प्रसिद्ध्या वा कवेः प्रौढिवशेन वा ।
हारादिवदलङ्कारः सन्निवेशो मनोहरः ॥ १ ॥

अन्वय—प्रसिद्ध्या वा कवेः प्रौढिवशेन शब्दार्थयोः मनोहरः सन्निवेशः अलंकारः, हारादिवत् ।

जिस प्रकार उचित स्थान में धारण किये गये हुए हार, कुण्डलादि आभूषण पुरुष को अलंकृत किया करते हैं वैसे ही कवियों की प्रसिद्धि से अथवा उनकी प्रौढ कल्पना द्वारा शब्द एवं अर्थ का सुन्दर विन्यास ही अलंकार कहलाता है ।

काव्य की रचना शब्द तथा अर्थ के द्वारा हुआ करती है । शब्दगत तथा अर्थगत सौन्दर्य की स्थापना उनके सम्यक् प्रयोग पर ही आधारित है । समुचित प्रयोग करना या तो कवि-परम्परा से उपलब्ध होता है अथवा काव्यरचयिता अपनी प्रौढ़कल्पना के द्वारा उसे प्राप्त करता है । उपर्युक्त श्लोक में जो 'प्रौढ़ि' पद का प्रयोग किया गया है उससे यह ध्वनित होता है कि महाकवि जयदेव को कवि-प्रसिद्ध अलंकारों के अतिरिक्त कुछ अपनी नयी उद्भावनायें करना भी अभीष्ट था ।

अलङ्कार का सामान्य लक्षण—

।जस प्रकार शरीर के अन्दर आत्मा का निवास है और वह आत्मा अपनी स्थिति तक शरीर की उपयोगिता को स्थिर रखा करता है; उसी प्रकार रसात्मक-

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कविता में भी रस, काव्य की आन्तरिक शोभा को बढ़ाने वाला एवं कविता को स्थिरता प्रदान करने वाला हुआ करता है। इसी कारण 'रस' को काव्य की आत्मा कहा गया है। किन्तु शरीर में आत्मा का निवास रहने पर भी हमें शरीर की बाह्यशोभा को बढ़ाने के निमित्त नाना प्रकार के प्रयास करने ही पड़ते हैं। वस्त्र, आभूषणों आदि से हम अपने शरीर के बाह्य सौन्दर्य को वृद्धि किया करते हैं। इसी भाँति काव्य की बाह्य-शोभा को बढ़ाने वाले कुछ साधन हुआ करते हैं जिनका कथन हमारे साहित्यशास्त्र के बढ़ाने वाले साधन 'अलंकार' कहलाते हैं। आचार्य दण्डी ने लिखा है—

"काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते"

अर्थात् काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्म अलंकार कहलाते हैं अथवा दूसरे शब्दों में यदि यह कहा जाय कि "किसी बात को चमत्कारपूर्ण ढंग से कथन करना ही अलंकार है" तो उचित ही होगा। अथवा काव्य में रसात्मक वर्णनों अथवा भावों को अधिक प्रभावशाली बनाने के निमित्त कथन करने के विचित्र प्रकार को अलंकार कहा जा सकता है।

अलंकार के भेद—

काव्य की शोभा बढ़ाने के साधन दो हैं—१ शब्द और २ शब्दों के अर्थ। इन्हीं के आधार पर अलंकार के मुख्यरूप से दो भेद स्वीकार किये गये हैं १—शब्दालंकार, २—अर्थालंकार। किन्तु कुछ आचार्यों ने इन दोनों में मिश्रित अलंकारों को ३—उभयालंकार की संज्ञा भी प्रदान की है।

शब्दालङ्कार—काव्य में जब शब्दों के प्रयोग में चमत्कार होता है तब वहाँ शब्दालंकार होता है यथा—

"चन्दनं खलु गोविन्दचरणद्वन्द्ववन्दनम्"

इस उद्धरण में 'चन्दन' एवं 'वन्दन' शब्दों में चमत्कार है। सुनने में भी ये प्रिय प्रतीत होते हैं। किन्तु यदि इन शब्दों के स्थान पर इन्हीं के पर्यायवाची दूसरे शब्द 'मलयज' यथा स्तुति अथवा नमन आदि रख दिये जायें तो शब्दों में विद्यमान चमत्कार नष्ट हो जायगा। अतः शब्दालंकार वहीं होता है जहाँ शब्दों के प्रयोगों में चमत्कार होता है तथा उनके पर्यायवाची शब्दों के रखने से वह सौन्दर्य एवं चमत्कार नष्ट हो जाता है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अर्थालङ्कार—जहाँ शब्दों के अर्थों में चमत्कार होता है तथा एक शब्द के स्थान पर उसी का पर्यायवाची दूसरा शब्द रखने पर भी अर्थ के चमत्कार में कोई अन्तर नहीं पड़ता है वहाँ अर्थालंकार होता है। यथा—

"पद्मानीव विनिद्राणि नेत्राण्यासन्नहमुखे"

यहाँ 'पद्मानि' के स्थान पर सरोरुहाणि अथवा कमलानि आदि तथा 'नेत्राणि' के स्थान पर चक्षूंषि अथवा नयनानि आदि शब्द रख देने पर भी अर्थ के चमत्कार में कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता है। अतः यहाँ अर्थालंकार है।

महाकवि जयदेव ने केवल निम्न शब्दालंकार ही स्वीकार किये हैं—

(१) छेकानुप्रास, (२) वृत्यनुप्रास, (३) लाटानुप्रास, (४) स्फुटानुप्रास, (५) अर्थानुप्रास, (६) पुनरुक्तप्रतीकाश, (७) यमक, (८) चित्र।

अब यहाँ क्रमशः इनका सोदाहरण वर्णन किया जायगा।

अनुप्रास का सामान्य लक्षण

जहाँ पर स्वर भिन्न होते हुये भी वर्णों का साम्य हो अथवा निरर्थक या सार्थक वर्णों की एक अथवा कई बार आवृत्ति हो, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। यह दो प्रकार का होता है। (१) वर्णगत, (२) शब्दगत। वर्णगत—अनुप्रास के जयदेव ने दो भेद माने हैं। (१) छेकानुप्रास। (२) वृत्यनुप्रास।

छेकानुप्रास—

स्वरव्यञ्जनसन्दोहव्यूहा मन्दोहदोहदा।
गौर्जगज्जाग्रदुत्सेका छेकानुप्रासभासुरा॥ २॥

सन्दोह = समानता। व्यूह = आवृत्ति। मन्द - सकृत् (एक बार)। ऊहः = ज्ञान। दोहदा = उत्पादिका। उत्सेक = उत्कर्ष। गौः = वाणी। छेकाः = विदग्धजन। भासुरा = देदीप्यमान।

सान्वय-लक्षण—स्वर-व्यंजन-सन्दोह-व्यूहा, मन्दोहदोहदा, जगज्जाग्रदुत्सेका गौः छेकानुप्रासभासुरा।

जिसमें स्वरों अथवा व्यञ्जनों की समानता की आवृत्ति होती है तथा जो एककालिक ज्ञान को उत्पन्न करनेवाली है (अर्थात् जिसकी एक बार ही आवृत्ति

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

होती है) संसार में जिसकी उत्कृष्टता प्रकाशित है, ऐसी वाणी 'छेकानुप्रास' से सुशोभित हुआ करती है।

संक्षेप में इसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि जहाँ अनेक स्वरों अथवा अनेक व्यञ्जनों की आवृत्ति एक बार होती है वहाँ छेकानुप्रास अलंकार होता है। चूंकि यह अनुप्रास छेक अर्थात् विदग्ध जनों को प्रिय होता है। अतः यह छेकानुप्रास कहलाता है।

उदाहरण—उपर्युक्त श्लोक में 'स्वर-व्यञ्जनम्' में अकार स्वर की तथा 'दोहदोहा' में 'द' 'ह' व्यञ्जन एवं 'ओ' की एक ही बार आवृत्ति हुई है। अतः यहाँ छेकानुप्रास अलंकार है।

वृत्त्यनुप्रास—

आवृत्तवर्णसम्पूर्णं वृत्त्यनुप्रासवद् वचः।
अमन्दानन्दसन्दोहस्वच्छन्दास्पदमन्दिरम् ॥ ३ ॥

अमन्द = अधिक। सन्दोह = समूह। आस्पद = स्थान।

सान्वय-लक्षण—आवृत्तवर्णसम्पूर्णं वृत्त्यनुप्रासवत् वचः अमन्दानन्दसन्दोह-स्वच्छन्दास्पदमन्दिरं भवति।

(रस के अनुकूल वर्णों की रचना को वृत्ति कहते हैं। वृत्ति के अनुकूल ही वर्णों की स्थापना करना वृत्त्यनुप्रास कहलाता है) आवृत्तियुक्त अक्षरों से पूर्ण तथा वृत्त्यनुप्रास से समन्वित वाणी अत्यधिक आनन्द-समूह की स्वतन्त्र-स्थिति का स्थान होती है। तात्पर्य यह है कि जिस रचना में एक अथवा अनेक वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होती है, वहाँ 'वृत्त्यनुप्रास' अलंकार होता है।

उदाहरण—उपर्युक्त श्लोक में ही "अमन्दानन्दसन्दोहस्वच्छन्दास्पदमन्दिरम्" इस पंक्ति में व्यञ्जन 'दकार' की आवृत्ति अनेक बार हुई है। अतः यहाँ 'वृत्त्यनुप्रास' अलङ्कार है।

छेकानुप्रास तथा वृत्त्यनुप्रास में अन्तर

छेकानुप्रास	वृत्त्यनुप्रास
छेकानुप्रास में एक वर्ण की आवृत्ति केवल एक बार ही होती है।	वृत्त्यनुप्रास में एक ही वर्ण की आवृत्ति अनेक बार होती है। उदाहरण—यथास्थान देखिये।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

लाटानुप्रासभूर्भिन्नाभिप्राया पुनरुक्तता ।
यत्र स्यान्न पुनः शत्रोर्गर्जितं तज्जितं जितम् ॥ ४ ॥

लाटानुप्रास—

लाटानुप्रासभू = लाटानुप्रास का स्थान ।

सान्वय लक्षण—भिन्नाभिप्राया पुनरुक्तता लाटानुप्रासभूः (भवति) ।

जहाँ एक शब्द अथवा पद की पुनरावृत्ति हो और उसका अर्थ भी एक ही हो किन्तु अन्वय भेद से तात्पर्य अथवा अभिप्राय में भिन्नता हो, वहाँ 'लाटानुप्रास' अलंकार होता है ।

उदाहरण—यत्र शत्रोः गर्जितं पुनः न स्यात् तत् जितं जितं (भवति)

जहाँ शत्रु की गर्जना पुनः न सुनाई दे वही विजय विजय है। यहाँ 'जितम्' पद की पुनरावृत्ति हुई है । दोनों पदों का अर्थ एक ही है किन्तु तात्पर्य की दृष्टि से दूसरे 'जितम्' शब्द का अभिप्राय 'सफल' माना गया है । अतः श्लोक के उत्तरार्द्ध का अर्थ इस भाँति समझा जायगा—

"जहाँ शत्रु की गर्जना पुनः न सुनाई पड़े वही विजय सफल है ।" इस प्रकार यहाँ 'लाटानुप्रास' अलंकार है ।

यह अनुप्रास शब्दगत होता है । अतः इसे शब्दानुप्रास भी कहा जा सकता है, किन्तु यह अनुप्रास लाट देश के निवासियों को अत्यन्त प्रिय था अतः इसको 'लाटानुप्रास' की संज्ञा दे दी गयी ।

स्फुटानुप्रास—

श्लोकस्यार्धे तदर्धे वा वर्णावृत्तिर्यदि ध्रुवा ।
तदा मता मतिमतां स्फुटानुप्रासता सताम् ॥ ५ ॥

सान्वय लक्षण—श्लोकस्यार्धे तदर्धे वा यदि वर्णावृत्तिः ध्रुवा, तदा सतां मतिमतां स्फुटानुप्रासता मता ।

यदि श्लोक के पूर्वार्ध अथवा उत्तरार्ध मे वर्णों की आवृत्ति निश्चित हो तो अच्छे विद्वानों के अनुसार वहाँ स्फुटानुप्रास अलंकार होता है । श्लोकार्ध में

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वर्णों की आवृत्ति दो प्रकार से मानी गई है। (१) श्लोकार्द्ध में आदि से अन्त पर्यन्त वर्णों की आवृत्ति। (२) श्लोकार्द्ध के दोनों चरणों (पदों) के अन्त में उसी वर्ण की आवृत्ति।

उदाहरण—उपर्युक्त श्लोक के उत्तरार्ध में आदि से अन्त तक तकार और मकार की आवृत्ति प्रथम प्रकार का उदाहरण है। पूर्वार्ध के दोनों चरणों में 'वा' शब्द की तथा उत्तरार्द्ध के दोनों चरणों 'ताम्' पद की आवृत्ति द्वितीय प्रकार का उदाहरण है।

अर्थानुप्रास—

उपमेयोपमानादावर्थानुप्रास इष्यते।
चन्दनं खलु गोविन्दचरणद्वन्द्ववन्दनम् ॥ ६ ॥

लक्षण—उपमेयोपमानादौ अर्थानुप्रास इष्यते।

जिस रचना में उपमेय और उपमान में 'वर्ण' की समता होती है वहाँ 'अर्थानुप्रास' अलंकार होता है।

उपमेय—जिसका वर्णन किया जा रहा हो अथवा जिसके लिये उपमा दी जाय उसे उपमेय कहते हैं।

उपमान—जिससे वर्ण्य की तुलना की जाये अथवा जिससे उपमा दी जाय उसे उपमान कहते हैं।

उदाहरण—गोविन्दचरणद्वन्द्ववन्दनम् खलु चन्दनम् ॥

"गोविन्द के दोनों चरणों में नमस्कार करना चन्दन के समान शान्ति देने वाला है।" यहाँ 'वन्दन' उपमेय तथा 'चन्दन' उपमान है। इन दोनों उपमेय और उपमानवाचक शब्दों में 'न' तथा 'द' की आवृत्ति हुई हैं अतः यहाँ अर्थानुप्रास अलङ्कार है।

टिप्पणी—उपर्युक्त अलंकार के बारे में यह शंका की जा सकती है कि जब उपमान और उपमेयरूप अर्थ के ज्ञान से यहाँ अर्थानुप्रास होता है तो इन अलंकारों की गणना अर्थालंकारों में ही करनी चाहिये थी। इस

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

शंका का समाधान यह है कि यहाँ अर्थ-ज्ञान के पश्चात् उपमानोपमेय भाव का ज्ञान नहीं होता अपितु अर्थ-ज्ञान से पूर्व ही समान वर्णवाले पदोंके ज्ञान से उसका बोध हो जाता है। अतः यह शब्दालंकार ही है। दूसरी बात यह है कि यदि इन उपमानोपमेयवाचक शब्दों के स्थान पर उन्हीं के पर्यायवाची दूसरे शब्द रख दिये जायँ तो अलंकारता नष्ट हो जाती है। अतः अर्थानुप्रास को शब्दालंकारों के अन्तर्गत रखना उचित है।

पुनरुक्तप्रतीकाश--

पुनरुक्तप्रतीकाशं पुनरुक्तार्थसन्निभम्।
अंशुकान्तं शशी कुर्वन्नम्बरान्तमुपैत्यसौ ॥ ७ ॥

सान्वय-लक्षण--पुनरुक्तार्थसन्निभं (यद् वचः तत्) पुनरुक्तप्रतीकाशम्। जिस रचना में एक बार कहे गये हुये अर्थवाले पद के समान अन्य पद प्रयुक्त हुये हों वहाँ 'पुनरुक्तप्रतीकाश' अलंकार होता है।

उदाहरण--असौ शशी अंशुकान्तं कुर्वन् अम्बरान्तं उपैति ॥

अर्थात् यह चन्द्रमा अपनी किरणों द्वारा सौन्दर्य का विस्तार करता हुआ आकाश में उदित हुआ है। यहाँ 'अंशुक' तथा 'अम्बर' शब्दों का अर्थ 'वस्त्र' है। अतः दोनों ही शब्द पुनरुक्त अर्थ के प्रकाशक से प्रतीत हो रहे हैं। परन्तु अर्थ करने पर दोनों की भिन्न-अर्थता स्पष्ट हो जाती है। अतः यहाँ 'पुनरुक्तप्रतीकाश' अलंकार है।

साहित्यशास्त्र के कुछ अन्य आचार्यों ने इस अलंकार का वर्णन 'पुनरुक्त-वदाभास' के नाम से किया है।

लाटानुप्रास तथा पुनरुक्तप्रतीकाश में अन्तर

लाटानुप्रास	पुनरुक्तप्रतीकाश
१—लाटानुप्रास में शब्दों की पुनरावृत्ति अवश्य होती है। किन्तु अर्थ समान होने पर भी तात्पर्य अथवा अभिप्राय में भिन्नता हुआ करती है।	१—पुनरुक्तप्रतीकाश में तो शब्द पुनरुक्त अर्थ के प्रकाशक से अवश्य प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तविक अर्थ में भिन्नता ही होती है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

यमकम्--

आवृत्तवर्णस्तबकं स्तबकन्दांकुरं कवेः ।
यमकं प्रथमा धुर्यमाधुर्यवचसो विदुः ॥ ८ ॥

सान्वय-लक्षण—धुर्यमाधुर्यकचसः प्रथमाः कवेः स्तवकन्दाङ्कुरं आवृत्तवर्णस्तवकं यमकं विदुः । धुर्याः अग्रणी मधुरभाषी विद्वज्जन । प्रथमाः = मुख्य । स्तव = स्तुति । कन्दः = बीज अथवा आरम्भ । स्तवकं = समूह ।

मधुरभाषी प्राचीन विद्वानों ने कवि की प्रशंसारूपी बीज के अंकुर से युक्त तथा अनेक वर्णों की आवृत्ति के समूह से समन्वित अलंकार को 'यमकालंकार' नाम से कहा है ।

यम शब्द का अर्थ जोड़ा है । जहाँ वर्णसमूह जोड़े के समान प्रयुक्त होते हैं वहाँ यमक होता है । अक्षरों में भेद हो, किन्तु श्रवण करते समय उनकी ध्वनि समान जान पड़े ।

उदाहरण—उपर्युक्त श्लोक में 'स्तबक' 'स्तबक', 'माधुर्य' 'माधुर्य' में अनेक वर्णों अथवा वर्णसमूह की आवत्ति हुई है । अतः यहाँ 'यमक' अलंकार है ।

लाटानुप्रास तथा यमक में अन्तर

लाटानुप्रास	यमक
१—'लाटानुप्रास' में जिस पद अथवा पदसमूह की आवृत्ति की जाती है वह न तो बिना अर्थ के ही होता है तथा न भिन्न भिन्न अर्थ वाला ही । पुनरावृत्त पद का अर्थ एक ही होता है । केवल अभिप्राय में ही भिन्नता होती है ।	१—'यमक' में पद अथवा पदसमूह या तो भिन्न-भिन्न अर्थ वाले होते हैं अथवा सार्थक और निरर्थक होते हैं ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पुनरुक्तप्रतीकाश तथा यमक में अन्तर

१—'पुनरुक्तप्रतीकाश' में वस्तुतः शब्द तो भिन्न-भिन्न होते हैं तथा उनके अर्थ भी भिन्न होते हैं किन्तु वे शब्द श्रवणमात्र से एक ही अर्थ के प्रकाशक से प्रतीत हुआ करते हैं।

१—'यमक' में एक ही शब्द अथवा पद की पुनरावृत्ति होती है तथा अर्थ भी उनके भिन्न-भिन्न ही हुआ करते हैं।

चित्रालङ्कार—

काव्यवित्प्रवरैश्चित्रं खड्गबन्धादि लक्ष्यते।
तेष्वाद्यमुच्यते श्लोकद्वयी सज्जनरञ्जिका ॥ ९ ॥

कामिनीव भवत्खड्गलेखा चारुकरालिका।
काश्मीरसेका रक्ताङ्गी शत्रुकण्ठान्तिकाश्रिता ॥ १० ॥

सान्वय-लक्षण—काव्यवित् प्रवरैः खड्गबन्धादि चित्रं लक्ष्यते। तेषु सज्जनराञ्जका श्लोकद्वयी आद्यमुच्यते ॥ ९ ॥

काव्य के तत्त्व को समझने वाले विद्वानों ने खड्गबन्ध आदि अलङ्कारों की गणना चित्रालङ्कार के अन्तर्गत की है। उनमें खड्गबन्ध को उपर्युक्त दोनों श्लोकों के माध्यम से सज्जनों के मनोरंजनार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है ॥ ९ ॥

(हे राजन् !) सज्जनरञ्जिका, चारुकरालिका, काश्मीरसेका, रक्ताङ्गी, शत्रुकण्ठान्तिकाश्रिता कामिनी इव भवत्खड्गलेखा (अस्ति) ॥ १० ॥

हे राजन् ! सज्जनों के मन को प्रसन्नता प्रदान करनेवाली सुन्दर हाथ-पैर वाली, कुंकुम लगाने के कारण लाल वर्णवाली तथा शत्रु के कण्ठ का आलिंगन करने वाली स्त्री की तरह आपके तलवार की धार सुन्दर एवं तेज, कुंकुम-लेप के सदृश रक्त से रंजित, शत्रु की गर्दन तक पहुँचने वाली तथा सज्जनों के मन को प्रसन्नता प्रदान करने वाली है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उदाहरण—

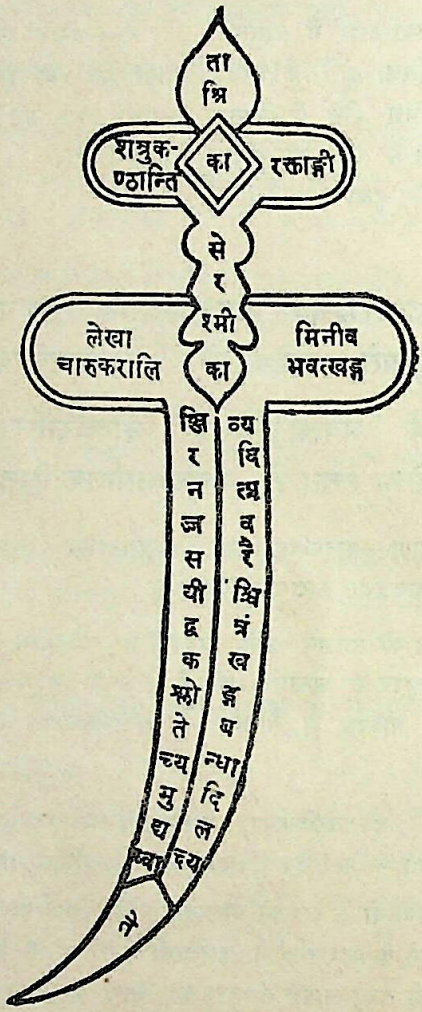

जिस प्रकार तलवार का वार पहले सीधी ओर और तदनन्तर बायीं ओ होता है उसी प्रकार इस अलङ्कार का भी बन्धन है। उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अर्थालङ्कार

उपमा—

उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः ।
हृदये खेलतोरुच्चैस्तन्वङ्गीस्तनयोरिव ॥ ११ ॥

सान्वय लक्षण—यत्र हृदये खेलतोः उच्चैः तन्वङ्गीस्तनयोरिव द्वयोः सादृश्यलक्ष्मीः उल्लसति (तत्र) उपमा ।

जिस वाक्य में अथवा जिस रचना में कामिनी के वक्षस्थल पर स्फुरण करते हुये दोनों स्तनों के सदृश उपमेय और उपमान की समान शोभा दृष्टिगोचर होती है वहाँ उपमालङ्कार होता है ।

समानधम, स्वभाव, शोभा, गुण, दशा आदि के आधार पर (अथवा गुण, क्रिया और धर्म में) जहाँ किसी प्राणी अथवा पदार्थ आदि की तुलना किसी अन्य प्राणी अथवा पदार्थ आदि के साथ की जाती है वहाँ उपमा अलङ्कार होता है ।

उपमा के चार अङ्ग होते हैं (१) उपमेय, (२) उपमान, (३) साधारणधर्म, (४) वाचकशब्द ।

उपमेय—जिस व्यक्ति, वस्तु, पदार्थ आदि का वर्णन इष्ट होता है अर्थात् जिसकी तुलना किसी अन्य से की जाती है, उसे उपमेय कहा जाता है । इसी को दूसरे शब्दों में वर्ण्यविषय, प्रस्तुत, अथवा प्रकृत भी कहते हैं ।

उपमान—जिस व्यक्ति अथवा पदार्थ आदि के साथ वर्ण्यविषय की समता या तुलना की जाती है अथवा जिससे सादृश्य दिखलाया जाता है, उसको उपमान कहते हैं । इसको अप्रस्तुत अथवा अप्रकृत भी कहा जाता है ।

साधारणधर्म—जिस विशेषता के माध्यम द्वारा उपमेय और उपमान की समानता दिखलाई जाती है, उसे साधारणधर्म कहते हैं ।

वाचकशब्द—जिस शब्द द्वारा उपर्युक्त समानता का भाव प्रगट किया जाता है अथवा उपमेय और उपमान की समानता सूचित होती है, उसे उपमा-वाचक अथवा वाचक शब्द कहा जाता है । यथा—इव, वत्, यथा, समान,

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

तुल्य, निभ, सन्निभ, संकाश, सदृक्, सदृश, सरूप, सम, कल्प इत्यादि-इत्यादि शब्द।

उदाहरण—उपर्युक्त श्लोक ही उपमा का उद्धरण भी है—इसमें द्वयो (उपमान और उपमेय की) उपमेय है। "तन्वङ्गीस्तनयोः" (कामिनी के वक्षस्थल पर खेलने वाले दोनों स्तन) उपमान हैं। "सादृश्यलक्ष्मी" (दोनों की समानता की शोभा का होना) ही साधारणधर्म है तथा 'इव' वाचकशब्द है। उपर्युक्त श्लोक में उपमा के चारों अङ्ग विद्यमान हैं अतः इसे पूर्णोपमा अलङ्कार भी कहा जा सकता है।

पूर्णोपमालङ्कार—जहाँ (जिस वाक्य में अथवा वर्णन आदि में) उपमा के उपर्युक्त चारों अंगों का वर्णन उपलब्ध होता है, वहाँ पूर्णोपमालङ्कार होता है।

लुप्तोपमालङ्कार—जहाँ (जिस वाक्य में अथवा वर्णन आदि में) उपर्युक्त चारों अंगों में से किसी एक, दो अथवा तीन अङ्गों का लोप (अर्थात् शब्द द्वारा न कहा जाना) होता है वहाँ लुप्तोपमा अलङ्कार होता है।

अनन्वय—

उपमानोपमेयत्वे यत्रैकस्यैव जागृतः।
इन्दुरिन्दुरिवेत्यादौ भवेदेवमनन्वयः॥ १२॥

सान्वय-लक्षण—यत्र एकस्यैव (एक वर्ण्यमान वस्तु की ही उपमानोपमेयत्वे (उपमानता और उपमेयता) जागृतः।

जिस स्थल में एक वर्ण्य (उपमेय) वस्तु उपमान और उपमेय दोनों हो वहाँ अनन्वय अलङ्कार होता है।

उदाहरण—इन्दुः, इन्दुः इव इत्यादौ एवं अनन्वयो भवेत्।

उपर्युक्त श्लोक में "इन्दुरिन्दुरिव" ही इस अलङ्कार का उदाहरण है अर्थात् चन्द्रमा, चन्द्रमा के समान है। यहाँ 'चन्द्र' ही उपमेय तथा उपमान भी है। कहने का तात्पर्य यह है कि जहाँ एक ही शब्द द्वारा उपमान और उपमेय दोनों का कथन किया जाये, वहाँ अनन्वय अलङ्कार होता है। उपर्यु

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उदाहरण में 'चन्द्र' ही उपमेय तथा 'चन्द्र' ही उपमान हैं। इस भाँति यहाँ एक ही शब्द द्वारा उपमेय एवं उपमान दोनों का कथन किया गया है अतः उपर्युक्त उद्धरण में अनन्वय अलङ्कार है।

उपमा एवं अनन्वय अलंकारों में अन्तर

उपमा	अनन्वय
१—उपमा में उपमेय एवं उपमान दोनों का पृथक्-पृथक् वर्णन किया जाता है।	१—अनन्वय में उपमेय अपना उपमान स्वयं होता है। अर्थात् जिस शब्द द्वारा उपमेय का कथन किया जाता है उसी शब्द द्वारा उपमान का भी कथन किया जाता है।

उपमेयोपमा—

पर्यायेण द्वयोस्तच्चेदुपमेयोपमा मता।
धर्मोऽर्थ इव पूर्णश्रीरर्थो धर्म इव त्वयि ॥ १३ ॥

सान्वय-लक्षण—चेत् द्वयोः पर्यायेण तत्, (तदा) उपमेयोपमा मता।

जिस रचना में उपमान और उपमेय दोनों (पर्यायेण) क्रम से एक दूसरे के उपमान और उपमेय हों वहाँ उपमेयोपमा अलङ्कार होता है।

उदाहरण—त्वयि धर्मः अर्थ इव पूर्णश्रीः, अर्थः च धर्म इव पूर्णश्रीः (अस्ति)।

कोई व्यक्ति किसी राजा को सम्बोधित कर कह रहा है—हे राजन्! आप में धर्म अर्थ की भाँति पूर्ण हैं तथा अर्थ धर्म की भाँति पूर्ण है। अर्थात् आपमें धर्म एवं अर्थ दोनों ही पुरुषार्थ पूर्णरूपेण विद्यमान हैं। यहाँ "त्वयि धर्मः अर्थ इव" में 'धर्म' उपमेय तथा अर्थ उपमान है किन्तु यही उपमेय एवं उपमान "अर्थः च धर्म इव" में क्रमशः उपमान एवं उपमेय बन गये हैं अर्थात् इसमें 'अर्थ' उपमेय एवं 'धर्म' उपमान बनकर आये हैं। अतः उपर्युक्त वाक्य में उपमेयोपमा अलङ्कार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उपमा और उपमेयोपमा अलङ्कारों में अन्तर

उपमा	उपमेयोपमा
१—उपमा एक ही वाक्य में होती है।	१—उपमेयोपमा सदा दो वाक्यों में स्पष्ट होती है तथा वहाँ दो उपमायें होती हैं। प्रथम वाक्य का उपमेय द्वितीय उपमा का उपमान तथा प्रथम उपमा का उपमान द्वितीय वाक्य का उपमेय हो जाता है।

प्रतीपोपमा—

विख्यातस्योपमानस्य यत्र स्यादुपमेयता।
इन्दुर्मुखमिवेत्यादौ स्यात्प्रतीपोपमा तदा ॥ १४ ॥

सान्वय-लक्षण—यत्र विख्यातस्य उपमानस्य उपमेयता स्यात् तदा (तत्र) प्रतीपोपमा स्यात्।

जिस रचना में प्रसिद्ध उपमान को उपमेय बना दिया जाता है वहाँ प्रतीपोपमा अलंकार होता है।

उदाहरण—"इन्दुः मुखं इव" इत्यादौ। "चन्द्र मुख के सदृश है" इस वाक्य में चन्द्रमा जो सर्वत्र उपमान के ही रूप में प्रसिद्ध है, उपमेय बना दिया गया है। अतः यहाँ प्रतीपोपमा अलंकार है।

ललितोपमा—

उपमाने तु लीलादिपदाढ्ये ललितोपमा।
त्वन्नेत्रयुगलं धत्ते लीलां नीलाम्बुजन्मनोः ॥ १५ ॥

सान्वय-लक्षण—उपमाने लीलादिपदाढ्ये (सति) तु ललितोपमा।

जिस वाक्य में उपमान के साथ लीला आदि पदों के रहने से शोभावृद्धि होती हो वहाँ ललितोपमा अलंकार होता है।

उदाहरण—"त्वन्नेत्रयुगलं नीलाम्बुजन्मनोः लीलां धत्ते।"

"तुम्हारे दोनों नेत्र दो नील कमलों की लीला अर्थात् शोभा को धारण करते

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हैं।" इस वाक्य में "नीलकमल" उपमान है। इसके साथ 'लीला' पद का भी प्रयोग किया गया है। अतः उपर्युक्त वाक्य में ललितोपमा अलङ्कार है।

स्तवकोपमा—

अनेकस्यार्थयुग्मस्य सादृश्यं स्तबकोपमा।
श्रितोऽस्मि चरणौ विष्णोर्भृङ्गस्तामरसं यथा ॥ १६ ॥

सान्वय लक्षण—(यत्र) अनेकस्य अर्थयुग्मस्य सादृश्यं (तत्र) स्तवकोपमा।

जिस वाक्य में अर्थ द्वन्द्वों का सादृश्य अर्थात् उपमानोपमेयभाव होता है वहाँ स्तवकोपमा अलंकार होता है।

उदाहरण—(यथा) भृङ्गः यथा तामरसं (तथा अहं) विष्णोः चरणौ श्रितः अस्मि।

जिस भाँति भ्रमर कमल का आश्रय प्राप्त करता है उसी भाँति मैंने भगवान् विष्णु के चरणों का आश्रय प्राप्त किया है। इस वाक्य में में तथा भ्रमर का एवं चरणों तथा कमल (तामरस) का परस्पर सादृश्य (उपमानोपमेयभाव) प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार इस एक ही वाक्य में दो उपमेयों (मैं तथा चरण) और दो उपमानों (भ्रमर तथा कमल) का परस्पर सादृश्य वर्णित है अतः यहाँ स्तवकोपमा अलंकार है।

सम्पूर्णोपमा—

स्यात् सम्पूर्णोपमा यत्र द्वयोरपि विधेयता।
पद्मानीव विनिद्राणि नेत्राण्यासन्नहर्मुखे ॥ १७ ॥

सान्वय-लक्षण—यत्र द्वयोः अपि विधेयता (वर्णनीयता) स्यात् (तत्र) सम्पूर्णोपमा।

जहाँ उपमान तथा उपमेय दोनों वर्ण्य होते हैं वहाँ सम्पूर्णोपमा अलंकार होता है।

उदाहरण—अहर्मुखे पद्मानि इव नेत्राणि विनिद्राणि आसन्।

प्रातःकाल कमलों के सदृश नेत्र भी निद्रारहित थे। प्रातःकाल होने पर

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कमल भी विकसित हो जाते हैं तथा नेत्र भी खुल जाते हैं। इस भाँति यहाँ कमल तथा नेत्र दोनों (उपमान एवं उपमेय) की वर्णनीयता स्पष्ट की गई है। अतः यहाँ सम्पूर्णोपमा अलंकार है।

रूपक—

यत्रोपमानचित्रेण सर्वथाप्युपरज्यते।
उपमेयमयी भित्तिस्तत्र रूपकमिष्यते ॥ १८ ॥

सान्वय लक्षण—यत्रोपमानचित्रेण उपमेयमयी भित्तिः सर्वथा उपरज्यते तत्र रूपकं इष्यते।

जिस रचना में उपमेयरूपी दीवाल उपमानरूपी चित्र से पूर्णतया चित्रित कर दी जाती है वहाँ रूपक अलंकार होता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ उपमेय एवं उपमान का वर्णन अभेदरूपक में किया जाये अथवा जहाँ दोनों की एकरूपता का ही वर्णन उपलब्ध हो। जैसे कोई कहे "मुखं चन्द्रः" अर्थात् मुख ही चन्द्रमा है। यहाँ मुख उपमेय तथा चन्द्र उपमान है दोनों का अभेद बतलाते हुये दोनों की एकरूपता का वर्णन किया गया है। अतः उपर्युक्त वाक्य मे रूपक अलंकार है।

उदाहरण—उपर्युक्त श्लोक में आये हुये "उपमानचित्रेण" तथा "उपमेयमयी भित्तिः" दोनों ही पद इस अलंकार के उद्धरण हैं। प्रथम में उपमेय मे चित्र का आरोप अथवा एकरूपता दिखलाई गई है तथा द्वितीय में उपमेय में भित्ति का आरोप किया गया है। अतः उपर्युक्त दोनों उद्धरणों में रूपक अलंकार है।

चन्द्रालोककार महाकवि जयदेव ने इस रूपक के चार भेद स्वीकार किये हैं—(१) सोपाधिरूपक, (२) सादृश्यरूपक, (३) आभासरूपक, (४) रूपितरूपक।

सोपाधिरूपक—

समानधर्मयुक्साध्यारोपात् सोपाधिरूपकम्।
उत्सिक्तक्षितिभृल्लक्ष्यपक्षच्छेदपुरन्दरः ॥ १९ ॥

सान्वय-लक्षण—समानधर्मयुक् साध्यारोपात् सोपाधिरूपकम्।

जहाँ साधारणधर्म के योगदान द्वारा आरोप की सिद्धि होती हो वहाँ

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सोपाधिरूपक अलंकार होता है। तात्पर्य यह है कि उपमान एवं उपमेय के साधारणधर्म का उल्लेख करने के अनन्तर जहाँ उपमान का उल्लेख किया जाता है, वहाँ सोपाधिरूपक अलंकार होता है।

उदाहरण—उत्सिक्तक्षितिभृल्लक्ष्यपक्षच्छेदपुरन्दरः ॥

गर्वोन्नत पर्वतरूपी राजाओं के पंखरूपी सहायकों का नाश करने में यह राजा इन्द्र है। इस वाक्य में 'राजा' उपमेय है तथा पुरन्दर (इन्द्र) उपमान है। "उत्सिक्त" अर्थात् गर्वोन्नत होना ही उपमान एवं उपमेय का साधारण धर्म है। समानधर्म का उल्लेख करने के पश्चात् ही उपमान "पुरन्दर" का कथन किया गया है। अत एव यहाँ सोपाधिरूपक अलंकार है।

क्षितिभृत् शब्द के भी दो अर्थ हैं १—पर्वत, २—राजा। इसी भाँति 'पक्ष' शब्द के भी दो अर्थ हैं। १—पंख, २—सहायक। पर्वतों में नृपत्व का तथा पक्षों में सहायकत्व का आरोप किया गया है। अतः यहाँ पर एक आरोप दूसरे आरोप के प्रति कारणरूप में स्थित प्रतीत होता है। अर्थात् "क्षितिभृत्" में नृपत्व का आरोप तथा पक्ष में सहायकत्व का आरोप, राजा में पुरन्दरत्व के प्रति कारण है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर 'सोपाधिरूपक' अलंकार को दो अवस्थायें स्पष्ट हो जाती हैं (अ) समानधर्म के योग द्वारा आरोप का सिद्ध होना (ब) अन्य आरोप अथवा आरोपों का प्रधान आरोप के प्रति कारण होना। इसीको परम्परित रूपक भी कहा गया है।

सादृश्यरूपक—

पृथक्कथितसादृश्यं दृश्यं सादृश्यरूपकम्।
उल्लसत्पञ्चशाखस्ते राजते भुजभूरुहः ॥ २० ॥

सान्वय लक्षण—पृथक्कथितसादृश्यं दृश्यं सादृश्यरूपकम्।

जहाँ सादृश्यका वर्णन पृथक्-पृथक् पदों अथवा शब्दों द्वारा किया जाये अर्थात् जहाँ उपमान एवं उपमेय के सादृश्य का वर्णन भिन्न-भिन्न पदों द्वारा करते हुये, उपमेय में उपमान का अभेदपूर्वक आरोप किया गया हो वहाँ सादृश्यरूपक अलङ्कार होता है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उदाहरण—उल्लसत्पञ्चशाखः ते भुजभूरुहः राजते ॥

'हे राजन् ! पाँच अंगुलिरूपी शाखाओं से युक्त आपका भुजरूपी वृक्ष सुशोभित हो रहा है यहाँ भुजा में वृक्ष का आरोप किया गया है। अतएव वृक्ष की शाखाओं की समता के लिये अंगुलियों में शाखाओं का आरोप किया गया है। यहाँ दो विभिन्न पदों द्वारा उपमान तथा उपमेय के सादृश्य का वर्णन किया गया है। अतः यहाँ सादृश्यरूपक अलंकार है।

आभासरूपक—

"स्यादङ्गयष्टिरित्येवंविधमाभासरूपकम् ।'

सान्वयलक्षणः—अङ्गयष्टिः इति एवंविधं आभासरूपकं स्यात् ।

"अङ्ग" अर्थात् शरीर "यष्टि" अर्थात् दण्ड है। इस प्रकार के रूपक जहाँ आभासमात्र हो, सौन्दर्य का कोई चमत्कार प्रतीत न होता हो, वह आभासरूपक अलङ्कार है।

उदाहरण—"अङ्गयष्टिः" यष्टि (दण्ड) लम्बी होती है। उसके लम्बापन को देखकर ही शरीर में उसका आरोप कर दिया गया है। वस्तुतः आरोप में किसी सौन्दर्य अथवा चमत्कार की प्रतीति नहीं हो रही है। केवल आरोप कर देने के कारण यहाँ रूपक के आभासमात्र का ज्ञान हो रहा है। अतः यहाँ आभासरूपक अलंकार है।

अङ्गयष्टिधनुर्वल्लीत्यादि रूपितरूपकम् ॥ २१ ॥

लक्षण—जहाँ आरोपित पदों का आरोप किया जाता है, वहाँ रूपित रूपक अलंकार होता है।

उदाहरण—"अङ्गयष्टि" "धनुर्वल्ली" अर्थात् अङ्गरूपी यष्टि ही धनुरूपी वल्ली (लता) है। यहाँ पहले "अङ्ग" और "धनु" में क्रमशः "यष्टि" और "वल्ली" का आरोप किया गया पुनः "अङ्गयष्टि" पर "धनुर्वल्ली" का आरोप किया गया है। अतः यहाँ रूपितरूपक अलंकार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

रूपक तथा उपमा अलङ्कारों में अन्तर

उपमा	रूपक
(१) 'उपमा' अलङ्कार में उपमेय तथा उपमान की समता प्रकट की जाती है।	(१) 'रूपक' अलङ्कार में उपमेय और उपमान में एकरूपता प्रदर्शित की जाती है।
(२) 'उपमा' अलङ्कार में भेद तथा अभेद दोनों रहता है।	(२) 'रूपक' में केवल अभेद ही रहता है।
(३) 'उपमा' में सौन्दर्य अथवा चमत्कार की प्रतीति साधर्म्य के कारण होती है।	(३) 'रूपक' में उपमेय में उपमान का आरोप करने से वैचित्र्य अथवा चमत्कार उत्पन्न होता है।
(४) 'उपमा' में साम्य की प्रतीति अभिधा द्वारा ही हो जाती है।	(४) 'रूपक' में साम्य का बोध व्यञ्जनों द्वारा होता है।

परिणाम—

परिणामोऽनयोर्यस्मिन्नभेदः पर्यवस्यति।
कान्तेन पृष्टा रहसि मौनमेवोत्तरं ददौ ॥ २२ ॥

सान्वयलक्षण—यस्मिन् अनयोः (उपमेम और उपमान का) अभेदः एकता) पर्यवस्यति, परिणामः।

जहाँ उपमान और उपमेय का अन्त अभेद में दिखलाया गया हो तथा इसका उपयोग क्रियापद के साथ किया गया हो, वहाँ परिणाम अलङ्कार होता है।

उदाहरण—रहसि कान्तेन पृष्टा मौनं एव उत्तरं ददौ।

एकान्त में किसी नायक द्वारा कुछ पूछे जाने पर नायिका ने (लज्जावश) मौन ही उत्तर दिया अर्थात् वह कुछ बोली नहीं। यहाँ 'उत्तर' शब्द में 'मौन' का आरोप किया गया है। "मौन" कोई दी जानेवाली वस्तु नहीं है किन्तु फिर भी उसका 'उत्तर' पद के साथ अभेद सम्बन्ध दिखला कर इस क्रिया के साथ इसका उपयोग किया गया है। अतः यहाँ परिणाम अलङ्कार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

रूपक और परिणाम अलङ्कारों में अन्तर

रूपक	परिणाम
१—'रूपक' उपमान और उपमेय के अभेद मात्र में होता है।	२—किन्तु 'परिणाम' में उपमेय उपमान का अभेद सम्बन्ध हो पर भी उपमान का क्रिया साथ सम्बन्ध भी रहा करता है

उल्लेख—

बहुभिर्बहुधोल्लेखादेकस्योल्लेखिता मता।
स्त्रीभिः कामः प्रियैश्चन्द्रः कालः शत्रुभिरैक्षि सः ॥ २३

सान्वय-लक्षण—एकस्य बहुभिः बहुधा उल्लेखात् उल्लेखिता मता।

जहाँ एक ही वस्तु का अनेक व्यक्तियों द्वारा अनेक प्रकार से (अ रूपों में) वर्णन किया जाय वहाँ उल्लेख अलङ्कार होता है।

उदाहरण—सः स्त्रीभिः कामः प्रियैः चन्द्रः शत्रुभिः कालः ऐ

वह राजा स्त्रियों द्वारा कामदेव के रूप में, प्रियजनों द्वारा चन्द्रमा के में और शत्रुओं द्वारा काल के रूप में देखा गया। यहाँ एक ही राजा को कर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर भिन्न-भिन्न प्रभाव पड़ा तथा उन्होंने उसका पृथक्-पृथक् रूप से अनेक प्रकार से किया। अतः यहाँ उल्लेख अलङ्कार है।

जहाँ एक ही व्यक्ति द्वारा एक ही व्यक्ति का वर्णन विषय भेद की दृ अनेकविध किया जाये वहाँ भी उल्लेख अलङ्कार होता है। यथा—

'गुरुर्वचस्यर्जुनोऽयं कीर्तौ भीष्मः शरासने ॥''

अर्थात् वह राजा वाक्पटुता में गुरु (बृहस्पति), कीर्ति में अर्जुन तथा धनु में भीष्म है। इस भाँति उल्लेख अलङ्कार निम्न दर्शित दो प्रकार का हुआ—

१—अनेक व्यक्तियों द्वारा जहाँ एक ही वस्तु अथवा व्यक्ति आदि अनेकविध वर्णन किया जाय।

२—एक ही व्यक्ति द्वारा जहाँ एक ही वस्तु अथवा व्यक्ति आदि का विध वर्णन किया जाय।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अपह्नुति—

अतथ्यमारोपयितुं तथ्यापास्तिरपह्नुतिः।
नायं सुधांशुः किं तर्हि व्योमगङ्गासरोरुहम् ॥ २४ ॥

सान्वय-लक्षण—(यत्र) अतथ्यं आरोपयितुं तथ्यापास्तिः (सत्य का निषेध) (क्रियते तत्र) अपह्नुतिः। जिस रचना में असत्य का आरोप करने के निमित्त सत्य का निषेध किया जाता है, वहाँ अपह्नुति अलङ्कार होता है।

उदाहरण—अयं सुधांशुः न, किं तर्हि ? व्योमगङ्गा-सरोरुहम्।

यह चन्द्रमा नहीं है। तो फिर क्या है ? आकाश गंगा का कमल है। यहाँ 'चन्द्र' का निषेध करके उसे 'कमल' बतलाया गया है। वस्तुतः आकाश में 'चन्द्र' का होना सत्य है तथा कमल का होना असत्य है। किन्तु फिर भी असत्य 'कमल' का आरोप करने के लिये सत्य 'चन्द्र' का निषेध किया गया है। अतः यहाँ अपह्नुति अलङ्कार है।

"अपह्नुति और रूपक अलङ्कारों में अन्तर"

रूपक	अपह्नुति
१—'रूपक' में उपमेय पर उपमान का निषेध-रहित आरोप रहता है।	१—अपह्नुति में उपमेय पर उपमान का निषेध-सहित आरोप रहता है। इसमें प्रस्तुत का निषेध कर अप्रस्तुत की स्थापना की जाती है। निषेध कवि-कल्पित होता है।

यथा—"मुखचन्द्र" कहने में रूपक है तथा "यह मुख नहीं, चन्द्रमा है" कहने में अपह्नुति अलङ्कार है।

चन्द्रालोक-कार जयदेव ने इस अलङ्कार के चार भेद स्वीकार किये हैं—

(१) पर्यस्तापह्नुति (२) भ्रान्तापह्नुति (३) छेकापह्नुति (४) कैतवापह्नुति।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पर्यस्तापह्नुति—

पर्यस्तापह्नुतिर्यत्र धर्ममात्रं निषिध्यते ।
नायं सुधांशुः किं तर्हि ? सुधांशुः प्रेयसीमुखम् ॥ २५ ॥

सान्वय-लक्षण—यत्र धर्ममात्रं निषिध्यते (तत्र) पर्यस्तापह्नुतिः ।

जिस रचना में किसी वस्तु के धर्म का निषेध कर उस धर्म का आरोप अ वस्तु पर किया जाता है वहाँ पर्यस्तापह्नुति अलङ्कार होता है ।

उदाहरण—अयं सुधांशुः न । किं तर्हि ? प्रेयसी-मुखं सुधांशुः ॥

यह चन्द्रमा नहीं है तो फिर चन्द्रमा कौन है ? चन्द्रमा तो प्रेयसी का मु है । यहाँ चन्द्र के चन्द्रत्व का निषेध किया गया है तथा उस चन्द्र का आरो प्रिया के मुख पर किया है । अत एव यहाँ पर्यस्तापह्नुति अलङ्कार है ।

भ्रान्तापह्नुति—

भ्रान्तापह्नुतिरन्यस्य शङ्कया तथ्यनिर्णये ।
शरीरं तव सोत्कम्पं ज्वरः किं ? न सखि, स्मरः ॥ २६ ॥

सान्वय-लक्षण—अन्यस्य शङ्कया तथ्यनिर्णये भ्रान्तापह्नुतिः ।

जहाँ किसी विशेष प्रकार की स्थिति के उत्पन्न होने पर किसी को शङ्का हो तथा उस शङ्का के दूर करने के निमित्त सत्य का निर्णय कर लि जाता हो, वहाँ भ्रान्तापह्नुति अलङ्कार होता है ।

उदाहरण—तव शरीरं सोत्कम्पम्, ज्वरः किं ? न सखि, स्मर

[एक सखी को कांपती हुई देखकर दूसरी सखी पूछ रही है ।] हे सखी तुम्हारा शरीर काँप रहा है, ज्वर है क्या ? [वह उत्तर देती है] नहीं यह ज्व नहीं है, यह कम्पन तो काम-जन्य है ।

यहाँ काम के द्वारा उत्पन्न हुये कम्पन को दूसरी सखी ज्वर समझ रही है उसकी इस शंका को दूर कर सखी सत्य का निर्णय करती हुई कहती है "ज्व नहीं है, यह तो कामजन्य कम्पन है ।?' अतः यहाँ भ्रान्तापह्नुति अलङ्कार है ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

छेकापह्नुति—

छेकापह्नुतिरन्यस्य शङ्कया तथ्यनिह्नवे ।
प्रजल्पन् मत्पदे लग्नः, कान्तः किं ? न हि नूपुरः ॥ २७ ॥

सान्वय लक्षण—अन्यस्य शङ्कया तथ्यनिह्नवे छेकापह्नुतिः ।

अन्य व्यक्ति के द्वारा जहाँ शङ्का किये जाने पर वास्तविकता को छिपाया जाय वहाँ छेकापह्नुति अलङ्कार होता है ।

उदाहरण—प्रजल्पन् मत्पदे लग्नः । किं कान्तः ? न हि, नूपुरः ॥

[कोई नायिका अपनी किसी प्रियसखी को प्रियतम के साथ हुये प्रेमालाप तथा सम्भोग के संदर्भ में हुए चरित्र का वर्णन सुना रही है । इसी बीच वहाँ उसकी एक दूसरी सखी आ उपस्थित होती है । किन्तु उसे वह उक्त वर्णन सुनाना उचित नहीं समझती] अतः नायिका द्वारा ऐसा कहे जाने पर कि "बात करता हुआ अथवा अनुनय-विनय करता हुआ वह मेरे चरणों पर आ गिरा" आई हुई दूसरी सखी नायिका से पूछती है कि "कौन ? तुम्हारा प्रियतम ?" इस प्रश्न के उत्तर में नायिका की स्वीकारात्मक उत्तर देना चाहिए था । किन्तु नायिका उस सखी को सत्य बात से अवगत कराना उचित नहीं समझती । अतएव वास्तविकता को छिपाते हुये वह उत्तर देती है 'नहीं, पैजन (नूपुर) ही पैर में आ लगा ।" इस प्रकार यहाँ सत्य बात को छिपाकर असत्य को ही जोड़ दिया गया है । अतः यहाँ छेकापह्नुति अलंकार है ।

कैतवापह्नुति—

कैतवापह्नुतिर्व्यक्ते व्याजाद्यैर्निह्नवे पदैः ।
निर्यान्ति स्मरनाराचाः कान्ता दृक्पातकैतवात् ॥ २८ ॥

सान्वय-लक्षण—व्याजाद्यैः पदैः निह्नवे व्यक्ते कैतवापह्नुतिः ।

जिस रचना में व्याज, कैतव आदि (अर्थात् छल, कपट आदि) पदों द्वारा शब्दों के माध्यम में प्रस्तुत वस्तु अथवा बात का छिपाना (गोपन) स्पष्ट रूप से किया गया हो, वहां कैतवापह्नुति अलंकार होता है ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उदाहरण—स्मरनाराचाः कान्तादृक्पातकैतवात् (कान्तानां दृक्पाताः तेषां कैतवात्) निर्यान्ति ॥

काम के बाण रमणियों के कटाक्षों के बहाने निकल रहे हैं। वहाँ वास्तविकता तो यह है कि ये कान्ता के कटाक्ष हैं जो कामदेव के बाणों की तरह लोगों के हृदयों में चुभ रहे हैं किन्तु यहाँ "कैतव" पद के द्वारा "ये प्रिया के कटाक्ष नहीं हैं, अपि तु कामदेव के बाण हैं।" ऐसा स्पष्ट करते हुये प्रस्तुतका निषेध ही अभिव्यंजित किया है। अतः यहाँ कैतवापह्नुति अलंकार है।

उत्प्रेक्षा—

उत्प्रेक्षोन्नीयते यत्र हेत्वादि निह्नुतिं विना।
त्वन्मुखश्रीकृते नूनं पद्मैर्वैरायते शशी ॥ २९ ॥

सान्वयलक्षण—यत्र निह्नुतिं विना हेत्वादि (हेतु, वस्तु और फल) उन्नीयते (तत्र) उत्प्रेक्षा। जहाँ गोपन अथवा निषेध किये बिना ही हेतु आदि में (हेतु, फल तथा वस्तु में) उत्कट कोटि का सन्देह किया जाता है, वहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार होता है।

उदाहरण—नूनं शशी त्वन्मुखश्रीकृते पद्मैः वैरायते।

निश्चय ही चन्द्रमा तुम्हारे मुख की शोभा को प्राप्त करने के लिये कमलों के साथ वैर करता है।

साधारणतया इस उत्प्रेक्षा को हेतु (कारण) आदि की दृष्टि से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है (१) हेतूत्प्रेक्षा, (२) फलोत्प्रेक्षा, (३) वस्तूत्प्रक्षा।

(१) हेतूत्प्रेक्षा—वास्तविकता न होने पर भी जहाँ किसी वस्तु को किसी वस्तु का कारण मान लिया जाय वहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलंकार होता है। जैसे—उपर्युक्त उदाहरण में नायिका के मुख-शोभा प्राप्ति रूप फल का कारण चन्द्रमा और कमल का बैर (शत्रुता) ही मान लिया गया है। वास्तविकता तो यह है कि चन्द्रमा और कमल का परस्पर विरोध (वैर) तो स्वाभाविक ही है। किन्तु फिर भी इस वैर को कान्ता मुखकी शोभा प्राप्ति के कारण रूप में प्रस्तुत किया गया है। अतएव यहाँ हेतूत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(२) फलोत्प्रेक्षा—वस्तुतः जो जिस पदार्थ का फल नहीं है, उसे पदार्थ के फल के रूप में वर्णन करना ही 'फलोत्प्रेक्षा' है। जैसे—उपर्युक्त उदाहरण में ही कमल, चन्द्र का वैरी इस कारण से नहीं है कि उसे फलरूप में कान्ता-मुख की शोभा की प्राप्ति होगी। किन्तु फिर भी उसे फल बतलाया गया है। अतः यहां फलोत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

(३) वस्तूत्प्रेक्षा—जहां किसी दूसरी छोटोसी बात का आश्रय लेकर उसके द्वारा किसी अतथ्य बात का वर्णन किया गया हो, वहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार होता है। जैसे—उपर्युक्त उदाहरण में ही चन्द्र के उदित होने पर कमल संकुचित हो जाते हैं, इसी 'संकुचन'' को आधार बनाकर (अथवा इसी का आश्रय लेकर) चन्द्र से कमल के वैर रूप वस्तु की उत्प्रेक्षा की गई है। अतः यहां वस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

विशेष—इस भाँति उपर्युक्त एक ही उदाहरण द्वारा उत्प्रेक्षा के तीनों प्रकार का स्पष्टीकरण हो जाता है। ये तीनों ही प्रकार की उत्प्रेक्षायें कहीं अगूढ (वाच्य) तथा कहीं गूढ (प्रतीयमान) रूप में हुआ करती हैं। अतः अगूढ एवं गूढ की दृष्टि से प्रत्येक के दो-दो प्रकार पुनः हो जाते हैं। इस भाँति तीन प्रकार की अगूढोत्प्रेक्षः तथा तीन प्रकार की गूढोत्प्रेक्षा होती है। अर्थात् कुल मिलाकर उत्प्रेक्षा के ६ भेद अथवा प्रकार हो जाते हैं।

गूढोत्प्रेक्षा—

इवादिकपदाभावे गूढोत्प्रेक्षा प्रचक्षते।
त्वत्कीर्तिविभ्रमभ्रान्ता विवेश स्वर्गनिम्नगाम् ॥ ३० ॥

सान्वय लक्षण—इवादिकपदाभावे गूढोत्प्रेक्षा प्रचक्षते।

जहां इव, यथा, नूनं आदि पदों के न रहने पर भी हेतु, फल और स्वरूप में सम्भावना की जाती है, वहां गूढोत्प्रेक्षा अलङ्कार होता है।

उदाहरण—(हे राजन्!) त्वत्कीर्तिः विभ्रमभ्रान्ता स्वर्गनिम्नगां विवेश।

हे राजन्! तुम्हारी कीर्ति बहुत अधिक भ्रमण करने के कारण थकी मांदी होकर आकाशगंगा में (स्नानार्थ) प्रवेश कर गई।

अर्थात् जिस प्रकार थका हुआ पुरुष स्नान किया करता है, उसी भांति

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सर्वत्र भ्रमण करने के कारण तुम्हारी कीर्ति भी थक गई है (सर्वत्र व्याप्त हो गई है) तथा अब अपनी थकावट दूर करने के लिये स्नानार्थ वह (स्नान करने से थकावट दूर होती है) मानों अब स्वर्ग गंगा में प्रविष्ट हो गई हो। कीर्ति भ्रमण नहीं कर सकती, किन्तु फिर भी भ्रमण को स्नान का कारण बतलाया गया है। अतः यहाँ हेतूत्प्रेक्षा है। 'इव' आदि पद न होने से यह उत्प्रेक्षा गूढ़ हुई। कीर्ति को प्रवेश करने वाला बतलाया गया है। अतः यहाँ फलोत्प्रेक्षा हुई। इसी को दूसरे शब्दों में प्रतीयमान अथवा गम्या-उत्प्रेक्षा भी कहा गया है।

उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा में अन्तर

उपमा	रूपक	उत्प्रेक्षा
१—'उपमा' में उपमेय और उपमान का सादृश्य (समानता) प्रगट किया जाता है। यथा—उस नायिका का मुख चन्द्र-सदृश है। यहां (मुख उपमेय) और चन्द्र (उपमान) में सादृश्य का वर्णन किया गया है। अतः यहां 'उपमा' अलङ्कार है।	१—'रूपक' में उपमेय में उपमान का निषेध रहित आरोप किया जाता है। अथवा उपमेय और उपमान दोनों में एकरूपता मानी जाती है। यथा मुख-चन्द्र। यहां मुख (उपमेय) में चन्द्र (उपमान) का आरोप किया गया है। अथवा मुख और चन्द्रमा में एकरूपता स्थापित की गई है। अतः रूपक अलङ्कार है।	१—उत्प्रेक्षा में उपमेय में उपमान की केवल सम्भावना मात्र की जाती है। यथा—मुख मानो चन्द्रमा है। यह मुख (उपमेय) में चन्द्रमा (उपमान) की सम्भावना मात्र की गई है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षा-अलङ्कार है।

विशेष—उपर्युक्त अन्तर को यदि एक शब्द में ही कहना हो तो निम्न प्रकार कहा जा सकता है—

उपमा में **सादृश्य**, रूपक में आरोप और उत्प्रेक्षा में **सम्भावना** की जाती है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

स्मृति, भ्रान्ति और सन्देह अलङ्कार—

स्यात्स्मृतिभ्रान्तिसन्देहैस्तदेवालंकृतित्रयम् ।
पङ्कजं पश्यतः कान्तामुखं मे गाहते मनः ॥ ३१ ॥
अयं प्रमत्तमधुपः त्वन्मुखं वेद पङ्कजम् ।
पङ्कजं वा सुधांशुर्वेत्यस्माकं तु न निर्णयः ॥ ३२ ॥

सान्वय-लक्षण—(१) स्मृति–(२) भ्रान्ति–(३) सन्देहैः, तदेव अलंकृतित्रयम् स्यात् ।

(१) स्मृति-अलङ्कार—जहाँ (चमत्कारी) समान वस्तु को देखकर पूर्वपरिचित वस्तु का स्मरण हो आता है, वहाँ स्मृति अलंकार होता है ।

उदाहरण :—पङ्कजं पश्यतः मे मनः कान्ता-मुखं गाहते ।

कमल को देखकर मेरा मन प्रिया के मुख का स्मरण कर रहा है । यहाँ प्रिया के मुख के सदृश कमल को देखकर पूर्वपरिचित प्रिया के मुख का स्मरण आने से 'स्मृति' अलंकार है ।

(२) भ्रान्ति—मिथ्या (झूठ) ज्ञान को भ्रान्ति कहते हैं । किसी (चमत्कारपूर्ण सदृक्ष वस्तु में जब किसी अन्य वस्तु की भ्रान्ति होती है तब वहाँ भ्रान्ति अथवा भ्रान्तिमान् अलंकार होता है ।

उदाहरण—अयं प्रमत्तमधुपः त्वन्मुखं पङ्कजं वेद ।"

यह उन्मत्त भ्रमर तेरे मुख को कमल समझता है । यहाँ मुख तथा कमल के सादृश्य के कारण भ्रमर नायिका के मुख को मिथ्याज्ञान से कमल समझ रहा है ।

विशेष—भ्रम अथवा भ्रान्ति जब चमत्कारपूर्ण होगी तभी यह अलंकार होगा । "रज्जु में सर्प के भ्रम" में चमत्कार न होनेके कारण अलंकार नहीं हो सकता ।

भ्रान्ति अथवा भ्रान्तिमान् अलंकार में कवि-प्रतिभा के द्वारा प्रस्तुत में अप्रस्तुत मिथ्या (झूठ) ज्ञान हुआ करता है ।

(३) सन्देह—कभी-कभी किसी वस्तु को देखकर उसके असली रूप का निश्चय नहीं होता अपितु दुविधा ही बनी रहती है । इस मानसिक दशा का नाम ही सन्देह है । अतः सादृश्य के कारण जहाँ यह निर्णय न हो पाये कि वह

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वस्तु है क्या ? अतः एक ही वस्तु में दो प्रकार का सन्देह हो जाये और वास्तविकता का निर्णय सन्देह के कारण न किया जा सके तो वहाँ सन्देह अलंकार होता है।

उदाहरण :—पंकजं वा सुधांशुः वा इति निर्णयः अस्माकं न।

यह (प्रिया का मुख) कमल है अथवा चन्द्रमा ? इसका निर्णय हम नहीं कर पाते। यहाँ प्रिया का मुख देखकर नायक को तत्सदृश दो अन्य वस्तुओं का ध्यान आ रहा है किन्तु वह (प्रिया-मुख) उन दोनों में से क्या है ? इसका निर्णय नायक नहीं कर पा रहा है। अतः यहाँ सन्देह अलंकार है।

भ्रान्ति तथा उत्प्रेक्षा अलंकारों में अन्तर

भ्रान्ति	उत्प्रेक्षा
भ्रान्ति में ज्ञान निश्चयात्मक हुआ करता है।	उत्प्रेक्षा में ज्ञान कल्पित होता है अथवा उत्प्रेक्षा में सम्भावनामात्र की जाती है। अतः ज्ञान अनिश्चयात्मक हो रहता है।

मीलित —

मीलितं बहुसादृश्याद्भेदवच्चेन्न लक्ष्यते।
रसो नालक्षि लाक्षायाश्चरणे सहजारुणे ॥ ३३ ॥

सान्वय-लक्षण—बहुसादृश्यात् चेत् भेदवत् न लक्ष्यते (तत्र) मीलितम्।

जिस रचना में, आवश्यकता से अधिक समानता रहने के कारण परस्पर भेद की प्रतीति न होती हो, वहां मीलित अलंकार होता है।

उदाहरण—सहजारुणे चरणे लाक्षायाः रसः न अलक्षि।

स्वभावतः रक्तवर्ण के चरणों में (लगाया गया हुआ) लाक्षारस (यहाँ पर) दिखाई नहीं पड़ा, यहाँ पैर की लालिमा और लाक्षारस की लालिमा दोनों में इतना अधिक साम्य है कि जिसके कारण दोनों के भेद की प्रतीत ही नहीं हो पा रही है। अतः यहाँ मीलित अलंकार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भ्रान्ति तथा मीलित दोनों ही अलङ्कारों में से किसी एक ही वस्तु का निर्णय नहीं हो पाता है। अतः दोनों अलङ्कार एक से प्रतीत होते हैं। ऐसी स्थिति में दोनों अलङ्कारों का सूक्ष्म अन्तर स्पष्ट कर देना आवश्यक है।

भ्रान्ति तथा मीलित अलंकारों में अन्तर।।

भ्रान्ति	मीलित
१—"भ्रान्ति" में ज्ञाता का विषय एक ही वस्तु हुआ करती है तथा मिथ्याज्ञान के कारण उसे अन्यसदृश वस्तु का ज्ञान हुआ करता है।	१—"मीलित" में समानधर्म वाले दो पदार्थ ज्ञाता के विषय हुआ करते हैं तथा उनमें एक इतना अधिक सबल हुआ करता कि वह अपने समीप की वस्तु को छिपा दिया करता है। परिणामतः दोनों का पृथक्-पृथक् ज्ञान नहीं हो पाता।

सामान्य—

सामान्यं यदि सादृश्याद् भेद एव न लक्ष्यते।
पद्माकरप्रविष्टानां मुखं नालक्षि सुभ्रुवाम् ।। ३४ ।।

सान्वयलक्षण—यदि सादृश्यात् भेद एव न लक्ष्यते, सामान्यम्।

जहाँ सादृश्य के कारण अनेक पदार्थों में मिले हुये एक पदार्थ का बोध न हो, वहाँ सामान्य अलङ्कार होता है। अर्थात् बहुत सी वस्तुओं में यदि एक वस्तु मिल जाय तथा सादृश्य के कारण अपने परस्पर भेद की प्रतीति न हो पा रही हो तो वहाँ सामान्य अलङ्कार होता है।

उदाहरण—पद्माकरप्रविष्टानां सुभ्रुवां मुखं न अलक्षि।

(तालाब में स्नानार्थ प्रविष्ट हुई) सुन्दरियों के मुख, कमलों में मिलजाने से दिखलाई नहीं पड़ रहे थे। यहाँ कमलों तथा सुन्दरियों के मुखों का सादृश्य होने के कारण सुन्दरियों के मुखों की प्रतीति पृथक् रूप से नहीं हो पा रही है, अतः यहाँ सामान्य अलङ्कार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

मीलित और सामान्य अलंकारों का अन्तर

मीलित	सामान्य
१—मीलित में सबल पदार्थ निर्बल को छिपा लेता है।	१—सामान्य में दोनों पदार्थ इस भाँति घुलमिल जाते हैं कि जिसके कारण दोनों की पृथक्ता का ज्ञान नहीं हो पाता।
२—मीलित में दोनों पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो पाता है क्योंकि एक दूसरे को आच्छादित कर लेता है।	२—सामान्य में दोनों पदार्थ प्रत्यक्ष तो होते हैं किन्तु सादृश्य के कारण उनके भेद की प्रतीति नहीं हो पाती।

उन्मीलित—

हेतोः कुतोऽपि वैशिष्ट्यात् स्फूर्तिरुन्मीलितं मतम्।
लक्षितान्युदिते चन्द्रे पद्मानि च मुखानि च ॥३५॥

सान्वय-लक्षण—कुतः अपि हेतोः वैशिष्ट्यात् स्फूर्तिः उन्मीलितं मतम्।

जहाँ उपमान एवं उपमेय में परस्पर अत्यधिक सादृश्य होने पर भी किसी विशेष कारणवश भेद की प्रतीति हो जाय वहाँ उन्मीलित अलंकार होता है।

उदाहरण—चन्द्रे उदिते पद्मानि मुखानि च लक्षितानि।

चन्द्रोदय होने पर कमल और मुख दिखलाई पड़ गये। चन्द्रमा के उदित होने पर कमल संकुचित हो जाते हैं अतः कमलों के संकुचित हो जाने से जल में प्रविष्ट हुई नायिकाओं के मुख स्पष्टरूप से दिखलाई पड़ने लगे अर्थात् भेद की प्रतीति हो गई। यहाँ चन्द्रोदय रूप कारण की उपस्थिति से मुख तथा कमल दोनों में अत्यन्त सादृश्य होने पर भी दोनों की पृथक् पृथक् प्रतीति हो गई है अतः उन्मीलित अलंकार है।

विशेषः—यह अलंकार मीलित का विरोधी अलंकार है क्योंकि मीलित में तो भेद की प्रतीति ही नहीं होती और उन्मीलित में किसी कारण के उपस्थित हो जाने पर भेद की प्रतीति स्पष्ट हो जाती है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अनुमान—

अनुमानं च कार्यादेः कारणाद्यवधारणम् ।
अस्ति किञ्चिद्यदनया मां विलोक्य स्मितं मनाक् ॥ ३६ ॥

सान्वय लक्षण—कार्यादेः कारणाद्यवधारणम् अनुमानम् ।

कार्यं इत्यादि के द्वारा जहाँ कारण आदि का निर्णय किया जाता है, वहाँ अनुमान अलंकार होता है ।

उदाहरण–किञ्चिद् अस्ति यत् मां विलोक्यअनया मनाक् स्मितम् ।

कुछ न कुछ बात अवश्य है क्योंकि इस रमणी ने मेरी ओर देखकर अपनी मुसकान प्रगट की है । यहाँ रमणी के मुसकानरूपी कार्य द्वारा उसके मन में स्थित नायक के प्रति प्रेम आदि रूप कारण का ज्ञान हो रहा है, अतः अनुमान अलंकार हैं

विशेष—इस अनुमान अलंकार में भी चमत्कारिता का होना आवश्यक है । अन्यथा अलंकार नहीं होगा ।

अर्थापत्ति—

अर्थापत्तिः स्वयं सिध्येत् पदार्थान्तरवर्णनम् ।
स जितस्त्वन्मुखेनेन्दुः का वार्त्ता सरसीरुहाम् ॥ ३७ ॥

सान्वय लक्षण—(यत्र) पदार्थान्तरवर्णनं स्वयं सिध्येत् (तत्र) अर्थापत्तिः ।

जहाँ एक पदार्थ का वर्णन करने से ही दूसरे पदार्थ को सिद्धि हो वहाँ अर्थापत्ति अलंकार होता है ।

उदाहरण—त्वन्मुखेन स इन्दुः जितः, सरसीरुहां का वार्ता ।

हे प्रिये ! तुम्हारे मुख के द्वारा वह चन्द्रमा जीत लिया गया, फिर कमलों की तो बात ही क्या ? यहाँ मुख-शोभा द्वारा चन्द्रमा के पराजित होने के वर्णन से कमलों का पराजित होना स्वयं सिद्ध है, क्योंकि चन्द्रमा की शोभा कमलों की अपेक्षा अधिक है, अतः अर्थापत्ति अलंकार है ।

काव्यलिङ्गः—

स्यात् काव्यलिङ्गं वागर्थो नूतनार्थसमर्पकः ।
जितोऽसि मन्द ? कन्दर्प ! मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः ॥३८॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सान्वय-लक्षण—नूतनार्थसमर्पकः वागर्थः काव्यलिङ्गं स्यात् ।

नवीन अर्थ को बतलाने वाला जहाँ पद अथवा वाक्य हो, वहां काव्यलिङ्ग अलंकार होता है ।

उदाहरण—हे मन्द कन्दर्प ! (त्वं) जितः असि मच्चित्ते त्रिलोचनः अस्ति ।

हे मन्दबुद्धि कामदेव ? मैंने तुमको जीत लिया है क्योंकि मेरे मन में त्रिलोचन (शंकर) विराजमान हैं । यहां विजय का समर्थन मन में स्थित शिव के वर्णन द्वारा किया गया है । इस वाक्य से त्रिलोचन के तृतीय नेत्र में दाहकता है, वह अग्निमय है, इस नवीन अर्थ का ज्ञान भी होता है । अतः काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ।

"काव्यलिङ्ग और अनुमान अलंकारों में भेद (अन्तर)"

काव्यलिङ्ग	अनुमान
१—'काव्यलिङ्ग' में कार्य-कारण मात्र का ज्ञान व्यञ्जनाशक्ति द्वारा किया जाता है ।	१—'अनुमान' में साधनों द्वारा साध्य की अनुमिति की जाती हैं तथा यह साध्य-साधन-भाव शब्द द्वारा अभिहित होता है ।
२—'काव्यलिङ्ग' का कारण निष्पादक होता है ।	२—'अनुमान' का कारण ज्ञापक होता है ।

परिकार—

अलंकारः परिकरः साभिप्राये विशेषणे ।
सुधांशुकलितोत्तंसस्तापं हरतु वः शिवः ॥ ३९ ॥

सान्वय-लक्षण—साभिप्राये विशेषणे परिकरः अलंकारः ।

जिस रचना में विशेषण का प्रयोग किसी विशेष-अभिप्रायवश किया गया हो, वहां परिकर अलंकार होता है ।

उदाहरणः—सुधांशुकलितोत्तंसः शिवः तापं हरतु ।

चन्द्रमा से सुशोभित मस्तक वाले शिव जी आप लोगों के सन्ताप (कष्ट) दूर करें । यहां "शिव" शब्द का विशेषण "सुधांशुकलितोत्तंसः" है । यह

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विशेषण यह बतलाता है कि शिव में ताप मिटाने का सामर्थ्य इसलिए है कि उनके शिर पर सुधामयी किरणों वाला चन्द्र विद्यमान है। इस अभिप्राय से युक्त होने के कारण विशेषण साभिप्राय हुआ। अतः यहाँ परिकर अलङ्कार है।

परिकरांकुर—

साभिप्राये विशेष्ये तु भवेत् परिकरांकुरः।
चतुर्णां पुरुषार्थानां दाता देवश्चतुर्भुजः॥ ४०॥

सान्वय-लक्षण—विशेष्ये साभिप्राये परिकरांकुरः भवेत्।

जिस रचना में विशेष्य का प्रयोग अभिप्राय से युक्त होता है वहाँ परिकरांकुर अलङ्कार होता है।

उदाहरण—चतुर्भुजः देवः चतुर्णां पुरुषार्थानां दाता।

चार भुजाओं वाले देव (विष्णु) चार पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के देने वाले हैं। यहाँ "चतुर्भुज" विशेष्य साभिप्राय है। विष्णु के पास चार हाथ हैं, अतः वे चारों पुरुषार्थों के देने में समर्थ हैं। अतः उक्त उदाहरण मे परिकरांकुर अलंकार है।

परिकर और परिकरांकुर अलङ्कारों में अन्तर

परिकर	परिकराङ्कुर
'परिकर' में विशेषण, विशिष्ट अभिप्राय से युक्त होता है।	'परिकराङ्कुर' में विशेष्य, विशिष्ट अभिप्राय वाला होता है।

अतिशयोक्ति—

अतिशय + उक्तिः = अर्थात् जहाँ किसी वस्तु का वर्णन बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ाकर किया गया हो वहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार होतो है। महाकवि जयदेव ने इस अलङ्कार को निम्न ६ रूपों में विभक्त किया है—

(१) अक्रमातिशयोक्तिः (२) अत्यन्तातिशयोक्तिः (३) चपलातिशयोक्तिः (४) सम्बन्धातिशयोक्तिः (५) भेदकातिशयोक्तिः (६) रूपकातिशयोक्तिः।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection; Sholinganallur, Chennai

अक्रमातिशयोक्ति—

अक्रमातिशयोक्तिश्चेद् युगपत्कार्यकारणे ।
आलिङ्गन्ति समं देव ज्यां शराश्च पराश्च ते ।। ४१ ।।

सान्वय-लक्षण—चेत् कार्यकारणे युगपत्, अक्रमातिशयोक्तिः ।

जिस रचना में कार्य तथा कारण दोनों का एक साथ वर्णन किया गया हो अर्थात् क्रम का ध्यान न रखा गया हो, वहाँ अक्रमातिशयोक्ति अलङ्कार होता है ।

उदाहरण—हे देव ! ते शराः पराः च समं ज्यां आलिङ्गन्ति ।

हे राजन् ! तुम्हारे बाण तथा तुम्हारे शत्रु दोनों एक साथ ही ज्या (धनुष की डोरी-प्रत्यञ्चा तथा पृथिवी) का आलिङ्गन करते हैं ।

वस्तुतः डोरी पर रखकर जब बाण चलाया जायगा, तभी शत्रु पृथिवी पर गिरेंगे । इस भाँति कार्य के पूर्व कारण होना चाहिये किन्तु यहाँ तो कोई क्रम है नहीं । इधर धनुष की डोरी पर बाण चढा, उधर शत्रु भूमि पर गिरे । इस भाँति यहाँ दोनों (कार्य—कारण) का वर्णन एक साथ किया गया है अतः अक्रमातिशयोक्ति अलङ्कार है ।

अत्यन्तातिशयोक्ति—

अत्यन्तातिशयोक्तिस्तत्पौर्वापर्यव्यतिक्रमे ।
अग्रे मानो गतः पश्चादनुनीता प्रियेण सा ।। ४२ ।।

सान्वय-लक्षण—"तत् पौर्वापर्यव्यतिक्रमे अत्यन्तातिशयोक्तिः ।"

जहाँ कार्य और कारण का पूर्वापर भाव उलट जाये अर्थात् जहाँ कार्य पहले हो जाता है तथा कारण की उपस्थिति बाद में होती है वहाँ अत्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार होता है ।

उदाहरण—मानः अग्रे गतः, पश्चात् प्रियेण सा अनुनीता ।

अर्थात् नायिका का मान तो पहले ही चला गया, प्रिय ने उसे बाद में मनाया । यहाँ नायक द्वारा नायिका के मान को दूर करना कार्य है । इसका कारण है—नायक द्वारा नायिका का अनुनयविनय आदि का किया जाना (अर्थात् मनाया जाना) । किन्तु नायिका के गर्व (मान) के नष्ट होने रूप

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कार्य का वर्णन प्रिय के द्वारा मनाने रूप कारण से पूर्व ही किया गया है, अतः यहाँ अत्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार है।

चपलातिशयोक्ति —

चपलातिशयोक्तिस्तु कार्ये हेतुप्रसक्तिजे।
यामीति प्रियपृष्ठायाः वलयोऽभवदूर्मिका ॥ ४३ ॥

सान्वय-लक्षण—हेतुप्रसक्तिजे कार्ये चपलातिशयोक्तिः।

जिस वर्णन में कारण का ज्ञान होते ही तज्जन्य कार्य की उद्भावना हो जाये, वहाँ चपलातिशयोक्ति अलङ्कार होता है।

उदाहरण—यामि इति प्रियपृष्ठायाः ऊर्मिका वलयः अभवत्।

नायक द्वारा ऐसा कहे जाने मात्र से ही कि "मैं जा रहा हूँ" नायिका की अंगूठी हाथ का कंगन बन गई। यहाँ नायिका की दुर्बलता ही कार्य है। नायक का परदेश जाना कारण है। नायक परदेश गया नहीं है। अभी तो वह घर में विद्यमान है। हां, जाने की तय्यारी हो चुकी है। जाते समय वह प्रिया से कहता है 'मैं जा रहा हूँ'। बस इतना सुनना ही था—(विदेश गमन रूप कारण) कि नायिका की अंगूठी ने कंगन का आकार धारण कर लिया अर्थात् वह अत्यन्त निर्बल हो गई। यहाँ केवल कारण के ज्ञानमात्र से ही कार्य की उत्पत्ति हो गई है। अतः यहाँ चपलातिशयोक्ति अलंकार हैं।

सम्बन्धातिशयोक्ति —

सम्बन्धातिशयोक्तिः स्यात्तदभावेऽपि तद्वचः।
पश्य, सौधाग्रसंसक्तं विभाति विधुमण्डलम् ॥ ४४ ॥

सान्वय-लक्षण—तद् अभावे अपि तद् वचः सम्बन्धातिशयोक्तिः।

उसके साथ सम्बन्ध न रहने पर भी जहाँ उसका सम्बन्ध दिखलाया गया हो, वहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार होता है, अर्थात् जिस रचना में किसी वस्तु का सम्बन्ध न रहने पर भी सम्बन्ध दिखलाया गया हो, वहाँ यह अलंकार होता है। असम्बन्ध से सम्बन्ध की कल्पना करना ही इस अलंकार का प्राण है।

उदाहरण—पश्य, सौधाग्रसंसक्तं विधुमण्डलं विभाति।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

देखो, महल की छत को छूता हुआ चन्द्रमण्डल सुशोभित हो रहा है। इस उदाहरण में कवि को महल की ऊँचाई का वर्णन करना हो अभिप्रेत था, अतः उसने महल और चन्द्रमा के सम्बन्ध का यहाँ वर्णन किया है। वस्तुतः महलों के साथ चन्द्रमण्डल का सम्बन्ध कभी होता ही नहीं है। किन्तु कवि ने फिर भी उसका वर्णन कर चमत्कार उत्पन्न करने का प्रयास किया है। अतः यहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है।

भेदकातिशयोक्ति—

भेदकातिशयोक्तिश्चेदेकस्यैवान्यतोच्यते ।
अहो, अन्यैव लावण्यलीला बालाकुचस्थले ॥ ४५ ॥

सान्वय-लक्षण—चेत् एकस्य एव अन्यता, भेदकातिशयोक्तिः।

यदि एक ही पदार्थ का वर्णन दूसरे पदार्थ से किया गया हो अर्थात् जहाँ किसी एक वस्तु का वर्णन किसी दूसरे प्रकार से करके तत्सम्बन्धी अन्य वस्तुओं के साथ उसका भेद दिखला दिया गया हो अथवा उन वस्तुओं का परस्पर अभेद रहने पर भी भेद दिखलाया गया हो, वहाँ भेदकातिशयोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण—अहो, बालाकुचस्थले लावण्यलीला अन्या एव।

अरे इस रमणी के स्तनों के सौन्दर्य का विलास (शोभा) कुछ और ही प्रकार का है। इस उदाहरण में वस्तुतः स्तनों की शोभा शारीरिक सौन्दर्य से व्यतिरिक्त नहीं है किन्तु फिर भी कवि ने उसकी असाधारणता का वर्णन करने हेतु "अन्यैव" यह कर उसे अन्य शारीरिक सौन्दर्य से पृथक् दिखला दिया है। अतः यहाँ भेदकातिशयोक्ति अलंकार है।

रूपकातिशयोक्ति —

रूपकातिशयोक्तिश्चेत् रूप्यं रूपकमध्यगम् ।
पश्य नीलोत्पलद्वन्द्वान्निस्सरन्ति शिताः शराः ॥ ४६ ॥

सान्वय लक्षण—चेत् रूप्यं रूपकमध्यगं रूपकातिशयोक्तिः।

जहाँ रूप्य अर्थात् उपमेय रूपक अर्थात् उपमान के अन्दर समा गया हो, वहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार होता है। इस अलंकार में उपमान उपमेय को आत्मसात् कर लेता है अर्थात् उपमेय के वाचक शब्दों का उल्लेख इसमें नहीं किया जाता है। उसका ज्ञान भी वाचकशब्दों द्वारा ही हो जाया करता है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उदाहरण—पश्य, नीलोत्पलद्वन्द्वात् शिताः शराः निस्सरन्ति।

देखो, दोनों नील कमलों से तीक्ष्ण बाण निकल रहे हैं। यहाँ कवि का भाव यह है कि सुन्दरी के दोनों नेत्र ही दो नील कमल हैं। उनसे निकलने वाले तीक्ष्ण कटाक्ष ही तीक्ष्ण बाण हैं। यहाँ नेत्र उपमेय है और नीलोत्पलद्वन्द्व (दोनों नीलकमल) उपमान। इसी भाँति कटाक्ष उपमेय है और 'शित-शर' उपमान। इन उपमानों में उपमेय समा गये हैं अर्थात् उपमान नीलोत्पलद्वन्द्व तथा शित-शर ने उपमेय सुन्दरी के नेत्रयुगल तथा कटाक्ष को अपने में आत्मसात् कर लिया है। अतः यहाँ रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।

प्रौढोक्ति—

प्रौढोक्तिस्तदशक्तस्य तच्छक्तत्वावकल्पनम्।
कलिन्दजा तीररुहाः श्यामलाः सरलद्रुमाः॥ ४७॥

सान्वय-लक्षण—तद् अशक्तस्य तत् शक्तत्वावकल्पनं प्रौढोक्तिः।

किसी वस्तु में किसी विशिष्ट कार्य के करने का सामर्थ्य विद्यमान न होने पर भी उस वस्तु में उस कार्य विशेष के करने की सामर्थ्य का वर्णन किया जाना ही प्रौढोक्ति अलङ्कार है।

उदाहरण—कलिन्दजा तीररुहाः सरलद्रुमाः श्यामलाः।

यमुना के किनारे उगने वाले सरल नामक वृक्ष नीले हैं। वस्तुतः यमुना के तट में नीले वृक्षों को उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है। किन्तु फिर भी कवि ने उसे नीले वृक्षों का उत्पादक बतलाया है। अतः यहाँ प्रौढ़ोक्ति अलंकार है।

विशेष—कुछ टीकाकारों ने इस अलङ्कार का अन्तर्भाव सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार के अन्तर्गत ही माना है। इस दृष्टि से यह पृथक् अलंकार नहीं बनता।

संभावना—

संभावना यदित्थं स्यादित्यूहोऽन्यप्रसिद्धये।
सिक्तं स्फटिककुम्भान्तःस्थितिश्वेती कृतैर्जलैः॥ ४८॥
मौक्तिकं चेल्लतां सूते तत्पुष्पैस्ते समं यशः।

सान्वय-लक्षण :—अन्यप्रसिद्धये यदि इत्थं इति ऊहा संभावना।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जहाँ किसी कार्य को सिद्ध करने के लिए "यदि ऐसा हो तो ऐसा हो" इस प्रकार की कल्पना की जाती है वहाँ सम्भावना अलंकार होता है।

उदाहरण—चेत् स्फटिककुम्भान्त स्थितिश्वेतीकृतैः जलैः सिक्तं मौक्तिकं लतां सूते, तत्पुष्पैः समं ते यशः ॥

यदि स्फटिकमणि से निर्मित घड़े के जल से (श्वेतवर्ण के जल से) सिञ्चित मोती लता को उत्पन्न करे तो उस लता के पुष्पों के सदृश तुम्हारी कीर्ति है। कवि को राजा की निर्मल कीर्ति की तुलना करने के लिये इस संसार में कोई वस्तु उपयुक्त प्रतीत नहीं हुई। अतः वह एक विचित्र सम्भावना (कल्पना) करता है। वह कहता है कि यदि एक स्फटिकमणि निर्मित घड़े में जल रख दिया जाय तो वह जल श्वेतवर्ण का हो जायेगा। फिर उस अति श्वेत जल द्वारा मोती को सींचा जाय और फिर उस सिञ्चित मोती से एक लता उत्पन्न हो फिर उस लता से जो पुष्प निकलेंगे वह भी अति श्वेत वर्ण के होंगे हे राजन्! उस अति श्वेत पुष्प के समान तुम्हारा यश है। उपर्युक्त संभावना (कल्पना) कवि-कल्पना पर ही आधारित है। अतः यहाँ सम्भावना अलंकार है।

विशेष—कुछ आचार्यों ने इस अलंकार की पृथक् सत्ता स्वीकार नहीं की है अपितु इस अलंकार के कार्य को अतिशयोक्ति द्वारा ही सम्पन्न कर लेने का प्रयास किया है।

प्रहर्षण—

वाञ्छितादधिकप्राप्तिरयत्नेन प्रहर्षणम् ॥ ४९ ॥
दीपमुद्योतयेद्यावत्तावदभ्युदितो रविः।

सान्वय-लक्षण—अयत्नेन वाञ्छितात् अधिकप्राप्तिः प्रहर्षणम्।

विना किसी प्रयत्न के जहाँ इच्छित वस्तु से भी अधिक श्रेष्ठ वस्तु की प्राप्ति हो जावे वहाँ प्रहर्षण अलंकार होता है।

उदाहरण—यावत् दीपम् उद्योतयेत् तावत् रविः अभ्युदितः।

उन्होंने जब तक दीपक जलाना चाहा सूर्य ही उदित हो गया। यहाँ दीपक का केवल प्रकाश ही अभिलषित है। सूर्योदय हो जाना—उससे कहीं अधिक प्राप्ति है। दीया जलाने में तो प्रयत्न भी अपेक्षित था। किन्तु सूर्य का प्रकाश तो विना प्रयत्न के ही प्राप्त हो गया। अतः यहाँ प्रहर्षण अलंकार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विषादन—

इष्यमाणविरुद्धार्थसम्प्राप्तिस्तु विषादनम् ॥ ५० ॥
दीपमुद्योतयेद् यावत्तावन्निर्वाण एव सः ।

सान्वय-लक्षण :—इष्यमाणविरुद्धार्थसम्प्राप्तिः तु विषादनम् ।

जहाँ चाहे गये हुये पदार्थ के विरुद्ध वस्तु की प्राप्ति हो जाये वहाँ विषादन अलंकार होता है ।

उदाहरण—यावत् दीपं उद्योतयेत् सः निर्वाण एव ।

जैसे ही उसने (बुझते हुये) दीपक को तेज करना चाहा, वैसे ही वह बुझ गया । यहाँ दीपक के प्रकाश के अधिक तीव्र रूप में करने के निमित्त प्रयास किया गया, किन्तु परिणाम विपरीत ही हुआ कि वह बुझ ही गया । इस प्रकार यहाँ अभिलषित वस्तु के विरुद्ध वस्तु की प्राप्ति हुई है, अतः विषादन अलंकार है ।

तुल्ययोगिता —

क्रियादिभिरनेकस्य तुल्यता तुल्ययोगिता ॥ ५१ ॥
संकुचन्ति सरोजानि स्वैरिणीवदनानि च ।
प्राचीनाचलचूडाग्रचुम्बिबिम्बे सुधाकरे ॥ ५२ ॥

सान्वय-लक्षणः—अनेकस्य क्रियादिभिः तुल्यता तुल्ययोगिता ।

जिस रचना में अनेक प्रस्तुत अथवा अप्रस्तुत पदार्थों की समता क्रिया अथवा गुण के साथ की जाय अर्थात् उसका अन्वय क्रिया आदि में समान रूप से घटाकर बतलाया जाय वहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होता है ।

उदाहरण—प्राचीनाचलचूडाग्रचुम्बिबिम्बे सुधाकरे (सति) सरोजानि स्वैरिणीवदनानि च संकुचन्ति ।

उदयाचल पर्वत के उन्नत शिखर पर चन्द्रमण्डल के आ जाने पर (अर्थात् चन्द्रोदय हो जाने पर) कमल तथा व्यभिचारिणी स्त्रियों के मुख संकुचित हो जाते हैं । यहाँ 'कमल' तथा "व्यभिचारिणी स्त्रियों के मुख" दोनों ही पदार्थ प्रस्तुत हैं । दोनों की समता संकुचन रूप क्रिया द्वारा बतलाई गई हैं । चन्द्रोदय हो जाने पर कमल तो बन्द हो ही जाता है और व्यभिचारिणी स्त्रियों के जाने एवं आने आदि में अन्य व्यक्तियों द्वारा देख लिये जाने के भय के कारण विघ्न उपस्थित हो जाया करते हैं । इस प्रकार दोनों में संकुचित हो जाना अथवा उदास हो जाना समान है । अतः यहाँ तुल्योगिता अलंकार है ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

दीपक—

प्रस्तुताप्रस्तुतानां च तुल्यत्वे दीपकं मतम् ।
मेघां बुधः सुधामिन्दुर्बिभर्ति वसुधां भवान् ॥ ५३ ॥

सान्वय-लक्षणः—प्रस्तुताप्रस्तुतानां तुल्यत्वे दीपकं मतम् ।

जिस रचना में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत (अर्थात् उपमान तथा उपमेय) पदार्थों की समता क्रिया अथवा गुण के साथ की जाय अर्थात् उनका अन्वय एक ही क्रिया आदि के साथ किया जाय वहाँ दीपक अलंकार होता है । अथवा जहाँ प्रस्तुत पदार्थ के धर्म अप्रस्तुत पदार्थ को भी प्रकाशित करें, वहाँ दीपक अलंकार होता है, अथवा जहाँ उपमान और उपमेय की समता एक ही क्रिया अथवा गुण के साथ की जाय वहाँ उक्त अलंकार होता है ।

उदाहरण-बुधःमेधां, इन्दुः सुधां, भवान् (च) वसुधां बिभर्ति=धत्ते।

बुद्धिमान बुद्धि को धारण करता है, चन्द्रमा अमृत को धारण करता है और हे राजन् ! आप पृथ्वी को धारण करते हैं ।

यहाँ राजा का वर्णन प्रस्तुत है तथा बुद्धिमान पुरुष एवं चन्द्र का वर्णन अप्रस्तुत है । बिभर्ति क्रिया का सम्बन्ध प्रस्तुत राजा (उपमेय) तथा अप्रस्तुत बुध तथा इन्दु दोनों (उपमानों) के साथ किया गया है । अतः यहाँ दीपक अलंकार है ।

दीपक तथा तुल्ययोगिता अलंकारों में अन्तर

दीपक	तुल्ययोगिता
१—'दीपक' में कुछ पदार्थ प्रस्तुत रहते हैं और कुछ अप्रस्तुत ।	१—'तुल्ययोगिता' में या तो सभी पदार्थ प्रस्तुत रहेंगे अथवा सभी अप्रस्तुत ।
२—'दीपक' में अप्रस्तुत उपमान होता है तथा प्रस्तुत उपमेय ।	२—'तुल्ययोगिता' में इसकी कोई निश्चितता नहीं है कि कौन उपमान होगा और कौन उपमेय ?
३—'दीपक' में एक प्रस्तुत और दूसरे अप्रस्तुत का क्रिया अथवा गुण द्वारा साम्य दिखलाया जाता है ।	३—'तुल्ययोगिता' में अनेक प्रस्तुतों अथवा अप्रस्तुतों का समान क्रिया अथवा गुण के साथ सम्बन्ध दिखलाया जाता है ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

आवृत्तिदीपक—

आवृत्ते दीपकपदे भवेदावृत्तिदीपकम् ।
दीप्त्याऽग्निर्भाति भातीन्दुः कान्त्या भाति रविस्त्विषा ॥५४॥

सान्वय-लक्षण—दीपकपदे आवृत्ते (सति) आवृत्तिदीपकं भवेत् ।

जिस रचना में दीपक पद को (कार्य की सूचना देने वाले एक ही पद को उसी अर्थ में) कोई बार आवृत्ति की जाय वहाँ आवृत्तिदीपक अलंकार होता है ।

उदाहरण—अग्निः दीप्त्या भाति, इन्दुः कान्त्या भाति, रविः च त्विषा भाति ।

अग्नि लपटों की दीप्ति से चमकती अथवा सुशोभित होती है, चन्द्रमा कान्ति से चमकता अथवा सुशोभित होता है, और सूर्य प्रभा से चमकता अथवा सुशोभित होता है । यहाँ 'भाति' इस दीपक पद की बार बार, आवृत्ति की गई है, अतः यहाँ आवृत्ति दीपक अलङ्कार है ।

प्रतिवस्तूपमा—

वाक्ययोरर्थसामान्ये प्रतिवस्तूपमा मता ।
तापेन भ्राजते सूर्यः शूरश्चापेन राजते ॥ ५५ ॥

सान्वय-लक्षण—वाक्ययोः अर्थसामान्ये प्रतिवस्तूपमा मता ।

जहाँ उपमान और उपमेय दोनों के बोधक वाक्यों में एक ही साधारण धर्म का पृथक्-पृथक् रूप से वर्णन किया जाय, वहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है ।

उदाहरण—सूर्यः तापेन भ्राजते, शूरः चापेन राजते ।

(जैसे) सूर्य तेज से प्रकाशित होता है (वैसे ही वीर पुरुष धनुष द्वारा सुशोभित होता है ।

यहाँ "सूर्य तापेन भ्राजते" उपमान वाक्य है और "शूरः चापेन राजते" उपमेय वाक्य है दोनों वाक्यों में एक ही समान धर्म (साधारण धर्म) का प्रतिपादन "भ्राजते एवं राजते" इन दोनों क्रियाओं द्वारा पृथक्-पृथक् रूप से किया गया है । अतः यहाँ प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार है ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रतिवस्तूपमा तथा उपमा अलङ्कारों में अन्तर

प्रतिवस्तूपमा

१—'प्रतिवस्तूपमा' में दो वाक्य होते हैं।

२—'प्रतिवस्तूपमा' में दोनों वाक्य स्वतन्त्र होते हैं।

३—'प्रतिवस्तूपमा' में 'इव' आदि का प्रयोग नहीं किया जाता। इसमें समानताव्यंजित हुआ करती है।

४—'प्रतिवस्तूपमा' में समानता का वर्णन दो भिन्न शब्दों द्वारा किया जाता है।

५—'प्रतिवस्तूपमा' में दो वाक्यार्थों की समानता का कथन किया जाता है।

उपमा

१—'उपमा' में प्रायः एक वाक्य होता है।

२—वाक्यार्थोपमा में अवश्य ही दो वाक्यों का प्रयोग किया जाता है। किन्तु वे दोनों वाक्य परस्पर परतन्त्र हुआ करते हैं।

३—'उपमा' में प्रायः 'इव,' 'यथा' आदि शब्दों द्वारा समानता प्रकट की जाती है :

४—'उपमा' में समानता का प्रकाशन प्रायः एक बार कर दिया जाता है

५—'उपमा' में दो पदार्थों की समता का वर्णन अभिप्रेत होता है।

प्रतिवस्तूपमा और आवृत्ति दीपक अलङ्कारों में अन्तर

प्रतिवस्तूपमा

१—'प्रतिवस्तूपमा' में प्रस्तुत वाक्य उपमेय और अप्रस्तुत वाक्य उपमान होता है।

२—प्रतिवस्तूपमा साधर्म्य एवं वैधर्म्य दोनों में हुआ करती है।

आवृत्तिदीपक

१—'आवृत्तिदीपक' में दोनों वाक्य या तो प्रस्तुत होते हैं या अप्रस्तुत।

२—आवृत्तिदीपक सर्वथा साधर्म्य में ही होता है।

दृष्टान्त—

चेद् बिम्बप्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तदलंकृतिः।
स्यान्मल्लप्रतिमल्लत्वे संग्रामोद्दामहुंकृतिः॥ ५६॥

सान्वय-लक्षण—चेद् बिम्बप्रतिबिम्बत्वं तदलंकृतिः दृष्टान्तः।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जहाँ पृथक् पृथक् धर्मों का बिम्बप्रतिबिम्बभाव उपमान एवं उपमेय सूचक वाक्यों में प्रस्तुत किया जाता है, वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है। जैसे दर्पण में पुरुष का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है वैसे ही एक वाक्य के समान दूसरा वाक्य होने पर दृष्टान्त होता है।

उदाहरण—मल्लप्रतिमल्लत्वे संग्रामोद्दामहुंकृतिः (भवति)

जैसे दो योद्धाओं के होने पर संग्राम में भयंकर गर्जना होती है, वैसे ही बिम्बप्रतिबिम्बभाव होने पर दृष्टान्त अलंकार होता है। यहाँ बिम्बप्रतिबिम्बत्व भाव और मल्लप्रतिमल्लत्व होने के कारण बिम्बप्रतिबिम्ब भाव होता है, अतः दृष्टान्त अलंकार है।

बिम्बप्रतिबिम्बभाव—एक पारिभाषिक शब्द है। चित्रमीमांसाकार ने इस शब्द की व्याख्या करते हुये लिखा है—

"वस्तुतः भिन्नयोधर्मयोः परस्परसादृश्यादभिन्नतया अध्यवसितयोः द्विरुपादानं बिम्बप्रतिबिम्बभावः।"

वस्तुत; भिन्न होते हुए होने पर भी सादृश्य के कारण अभिन्न से प्रतीत होनेवाले उपमान और उपमेय के साधारणधर्मों के पृथक्-पृथक् प्रयोग को बिम्ब प्रतिबिम्बभाव कहते हैं।

मल्लप्रतिमल्लत्वे·····इत्यादि उदाहरण में दृष्टान्त और हुंकृति शब्दों का लिंगभेद होने के कारण बिम्बप्रतिबिम्बभाव स्पष्ट प्रतीत नहीं होता। अतः चन्द्रालोक कार जयदेव ने इस अलंकार का दूसरा उदाहरण भी दिया है—

दृष्टाऽन्तश्चेद्भवन्मूर्तिस्तन्मृष्टा दैवदुर्लिपिः।
जाता चेत् प्राक् प्रभा भानोस्तर्हि याता विभावरी ॥५७॥

अन्वय—चेत् भवन्मूर्तिः अन्तः दृष्टाः तत् दैवदुर्लिपिः मृष्टा, चेत् प्राक् भानोः प्रभा जाता, तर्हि विभावरी याता।

(कोई भक्त भगवान् से निवेदन करते हुए कह रहा है) यदि अन्तःकरण में आपकी मूर्तिका साक्षात्कार कर लिया जाय तो भाग्य का दुर्लेख मिट गया (अर्थात् हे भगवन्! अन्तःकरण में आपकी मूर्ति का साक्षात्कार कर लेने से सभी दुष्कृत नष्ट हो जाते है)। जैसे पूर्व दिशा में सूर्य की प्रभा उत्पन्न हो गई तो रात चली ही गई (अर्थात् पूर्व दिशा में सूर्य का प्रकाश फैलने से रात्रि का विनाश

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

हो जाया करता है)। इस उदाहरण में प्रथम वाक्य उपमेय तथा दूसरा वाक्य उपमान है। दोनों में बिम्बप्रतिबिम्ब भाव है। अतः दृष्टान्त अलंकार है।

दृष्टान्त और उपमा अलंकारों में अन्तर

उपमा	दृष्टान्त
१—'उपमा' में समानधर्म एक होता है तथा उसका कथन केवल एक बार किया जाता है।	१—दृष्टान्त में दो समानधर्म होते हैं तथा वे समान होने पर भी भिन्न हुआ करते हैं और उनका उपादान दो पृथक् पृथक् शब्दों द्वारा किया जाता है।

दृष्टान्त और प्रतिवस्तूपमा अलंकारों में अन्तर

दृष्टान्त	प्रतिवस्तूपमा
१—यद्यपि दृष्टान्त अलङ्कार के दोनों वाक्यों में सादृश्य पाया जाता है किन्तु फिर भी उन दोनो वाक्यों में साधारण धर्म भिन्न भिन्न हुआ करते हैं।	१—प्रतिवस्तूपमा' में साधारण धर्म एक ही होता है किन्तु उनका बखान दो भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा किया जाता है।
२—'दृष्टान्त' में बिम्बप्रतिबिम्ब भाव होता है।	२—'प्रतिवस्तूपमा' में प्रतिवस्तु भाव का विधान किया जाता है।
३—'दृष्टान्त' में कवि, पाठक आदि का ध्यान धर्म तथा धर्मी दोनों की ओर रहता है।	३—'प्रतिवस्तूपमा' में दो भिन्न शब्दों द्वारा कथित साधारण धर्म की ओर कवि, पाठक आदि का झुकाव रहता है।

निदर्शनाः—

वाक्यार्थयोः सदृशयोरैक्यारोपो निदर्शना।
या दातुः सौम्यता सेयं सुधांशोरकलङ्कता ॥ ५८ ॥

सान्वय लक्षण—सादृश्ययोः वाक्यार्थयोः ऐक्यारोपः निदर्शना।

जिस रचना में दो समान वाक्यार्थों में एकता का आरोप किया जाता है वहाँ निदर्शना अलंकार होता है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उदाहरण—दातुः या सौम्यता, इयं सुधांशोः सा अकलङ्कता।

दाता व्यक्ति में जो सौम्यता है, वही चन्द्रमा की निष्कलंकता है। यहाँ प्रथम वाक्यार्थ—'दानी पुरुष की सौम्यता'—उपमेय है तथा द्वितीय वाक्यार्थ 'चन्द्रमा की निष्कलंकता' उपमान है। 'या' तथा 'सा' (यत् तथा तत् शब्दों द्वारा, दोनों वाक्यार्थों में एकता का आरोप किया गया है अतः यहाँ निदर्शना अलंकार है।

निदर्शना और रूपक अलंकारों में अन्तर

रूपक	निदर्शना
(१) रूपक में उपमेय में उपमान की तद्रूपता का आरोप होता है।	(१) निदर्शना में दोनों पदार्थों (वाक्यार्थों) का पारस्परिक ऐक्यारोप होता है।
(२) रूपक में शब्द-सम्बन्धी अभेद रहता है।	(२) निदर्शना में अर्थ-सम्बन्धी अभेद रहता है।

निदर्शना और प्रतिवस्तूपमा अलंकारों में अन्तर

प्रतिवस्तूपमा	निदर्शना
(१) 'प्रतिवस्तूपमा' में दो वाक्यों का होना आवश्यक है।	(१) 'निदर्शना' एक वाक्य में भी हो सकती है।
(२) 'प्रतिवस्तूपमा' में दोनों वाक्य स्वतन्त्र रहते हैं तथा उनका अर्थ भी पूर्ण रहता है।	(२) 'निदर्शना' में दोनों वाक्यों का परस्पर सम्बन्ध रहता है और जब तक सादृश का ज्ञान नहीं हो जाता तब तक उनका अर्थ भी अपूर्ण रहता है।
(३) 'प्रतिवस्तूपमा' में दोनों वाक्यों के साधारण धर्म का भिन्न भिन्न शब्दों द्वारा निर्देश किया जाता है। साथ ही उनमें वस्तु-प्रतिवस्तु भाव भी रहता है।	(३) 'निदर्शना' में दोनों पदार्थ पूर्णतः भिन्न रहा करते हैं तथा उनके साधारण-धर्म का उपादान भी नहीं रहता है। साथ ही उसमें बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव द्वारा समानता की प्रतीति होती है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

निदर्शना और दृष्टान्त अलंकारों में अन्तर

निदर्शना	दृष्टान्त
(१) 'निदर्शना' एक वाक्य में भी संभव है।	(१) 'दृष्टान्त' सदैव दो वाक्यों में होता है।
(२) 'निदर्शना' के दोनों वाक्य परतन्त्र होते हैं। साथ ही उनके अर्थ का बोध भी साम्य ज्ञान से पूर्व नहीं होता है।	(२) 'दृष्टान्त' में दोनों वाक्य स्वतन्त्र तथा पूर्ण हुआ करते हैं।
(३) 'निदर्शना' में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव का ज्ञान हो जाने पर अर्थ का बोध हुआ करता है।	(३) 'दृष्टान्त' में दोनों अर्थ पूर्णरूपेण समझ में आ जाने के अनन्तर उनमें स्थित बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव की प्रतीति हुआ करती है।

व्यतिरेक—

व्यतिरेको विशेषश्चेदुपमानोपमेययोः ।
शैला इवोन्नताः सन्तः किन्तु प्रकृतिकोमलाः ॥ ५९ ॥

सान्वय-लक्षण—चेत् उपमानोपमेययोः विशेषः व्यतिरेकः ।

यदि उपमान और उपमेय में परस्पर वैशिष्ट्य उपलब्ध हो तो वहाँ 'व्यतिरेक' अलंकार होता है। अर्थात् दोनों में से किसी एक में दूसरे की अपेक्षा विशेषता आ जाय तो वहाँ उक्त अलंकार होता है।

उदाहरण—सन्तः शैलाः इव उन्नताः किन्तु प्रकृतिकोमलाः ।

सज्जन पुरुष पर्वतों के सदृश उन्नत (अर्थात् महान् अर्थवाले) किन्तु स्वभाव से कोमल हुआ करते हैं। तात्पर्य यह है कि सज्जन पुरुष पर्वतों के समान महान् होते हुए भी स्वभावतः कोमल होते हैं, जब कि पर्वत स्वभावतः कठोर होते हैं।

यहाँ 'सज्जन' उपमेय तथा 'पर्वत' उपमान हैं। उपमेय 'सज्जन' में 'पर्वत' उपमान की अपेक्षा अधिक वैशिष्ट्य ('कोमल होना') प्रदर्शित किया गया है। अतः यहाँ 'व्यतिरेक' अलंकार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सहोक्ति—

सहोक्तिः सहभावश्चेद् भासते जनरञ्जनः ।
दिगन्तमगमद् यस्य कीर्तिः प्रत्यर्थिभिः सह ॥ ६० ॥

सान्वय-लक्षण—चेत् जनरञ्जनः सहभावः भासते, सहोक्तिः ।

यदि दो भिन्न पदार्थों का साथ रहना जहाँ एक साथ एक वाक्य में वर्णन किया जाय, साथ ही वह वर्णन मनोरंजक अथवा चमत्कारपूर्ण भी हो तो वहाँ सहोक्ति अलंकार होता है ।

उदाहरण—यस्य कीर्तिः प्रत्यर्थिभिः सह दिगन्तं अगमत् ।

राजा की कीर्ति शत्रुओं के साथ ही साथ दिशाओं के अन्तिम प्रदेश तक पहुंच गई, यहाँ चारों दिशाओं में शत्रुओंके भाग जाने का वर्णन है । हारे हुये शत्रु जहाँ-जहाँ पहुँचें वहाँ-वहाँ शत्रुओं के साथ ही साथ राजा की कीर्ति भी पहुँच गई । इस प्रकार शत्रु एवं कीर्ति दोनों का एक साथ दिगन्त में पहुंचने का वणन यहाँ किया गया है । अतः यहाँ सहोक्ति अलंकार है ।

विनोक्ति—

विनोक्तिश्चेद् विना किंचित् प्रस्तुतं हीनमुच्यते ।
विद्या हृद्यापि साऽवद्या विना विनयसंपदम् ॥ ६१ ॥

सान्वय-लक्षण—चेत् विना किंचित् प्रस्तुतं हीनमुच्यते ।

जहाँ बिना शब्द के प्रयोग द्वारा प्रस्तुत पदार्थ को हीन कहा जाय अर्थात् किसी पदार्थ की प्रशंसा करके पुनः उसी प्रस्तुत पदार्थ को 'बिना' शब्द का प्रयोगकर हीन बना दिया जाय, वहाँ विनोक्ति अलङ्कार होता है ।

उदाहरण—हृद्या अपि सा विद्या विनयसंपदं विना अवद्या ।

मन को हरनेवाली होने पर भी वह विद्या विनयरूपी सम्पत्ति के बिना निन्दनीय ही होती है । यहाँ पहले विद्या की हृद्या शब्द द्वारा प्रशंसा की गई पुनः उसी विद्या को 'बिना' शब्द के प्रयोग द्वारा विनय रूपी सम्पत्ति से हीन बतलाया गया है, अतः यहाँ विनोक्ति अलंकार है ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

समासोक्ति—

समासोक्तिः परिस्फूर्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत् ।
अयमैन्द्री मुखं पश्य रक्तश्चुम्बति चन्द्रमाः ॥ ६२ ॥

सान्वय-लक्षण—चेत् प्रस्तुते अप्रस्तुतस्य परिस्फूर्तिः समासोक्तिः ।

जहाँ प्रस्तुत के वर्णन द्वारा अप्रस्तुत वृत्तान्त की भी प्रतीति हो अर्थात् जहाँ प्रस्तुत पदार्थ के वर्णन में किसी दूसरे (अप्रस्तुत) का भी वर्णन आ जाय वहाँ समासोक्ति, अलंकार होता है ।

उदाहरण—अयं रक्तः चन्द्रमा ऐन्द्रीमुखं चुम्बति, पश्य ।

"यह लाल रंग का चन्द्रमा पूर्व दिशा का चुम्बन कर रहा है यह तुम देखो ।" यहाँ पूर्व दिशा में उदय होनेवाले चन्द्र का वर्णन प्रस्तुत है । किन्तु चमत्कारवश इससे इस अप्रस्तुत वर्णन की भी प्रतीति हो रही है कि कोई नायक अपनी नायिका का चुम्बन कर रहा है । अतः यहाँ समासोक्ति अलंकार है ।

समासोक्ति और रूपक अलंकारों का अन्तर

समासोक्ति	रूपक
(१) समासोक्ति में प्रस्तुत के व्यवहार अथवा वृत्तान्त पर अप्रस्तुत के व्यवहार अथवा वृत्तान्त का आरोप किया जाता है ।	(१) रूपक में प्रस्तुत पर अप्रस्तुत का आरोप किया जाता है ।
(२) समासोक्ति में उपमान अथवा अप्रस्तुत की प्रतीति उपलब्ध की जाती है ।	(२) रूपक में उपमेय एवं उपमान दोनों का शब्दों द्वारा कथन किया जाता है ।

खण्डश्लेष—

खण्डश्लेषः पदानां चेदेकैकं पृथगर्थता ।
उच्छलद्भूरिकीलालः शुशुभे वाहिनीपतिः ॥ ६३ ॥

सान्वय-लक्षण—चेत् एकैकं (प्रति) पदानां पृथगर्थया, खण्डश्लेषः ।

जिस रचना में प्रत्येक वाक्यार्थ का पद-खण्डों द्वारा पृथक् पृथक् (दो) अर्थ किया जाय वहाँ खण्डश्लेष अलंकार होता है ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उदाहरण—उच्छलद्भूरिकीलालः वाहिनीपतिः शुशुभे।

(युद्ध में होने वाली मार काट के कारण) निकलते हुए रक्त, के प्रचुर प्रवाह से युक्त सेनापति तथा जल के प्रचुर प्रवाह से युक्त, समुद्र सुशोभित हुआ। यहाँ 'वाहिनी पति' तथा 'कीलाल' पदों में श्लेष है। अनेक अर्थोंवाले शब्दों के द्वारा अनेक अर्थों का प्रतिपादन करना ही श्लेष कहलाता है—

"अनेकार्थवाचकपदेन अनेकार्थाभिधानं श्लेषः।"

कीलाल शब्द के दो अर्थ हैं 'रक्त' तथा 'जल'। 'वाहिनी' पद के भी 'सेना' और 'नदी' दो अर्थ होते हैं। अतः वाहिनीपति शब्द के 'सेनापति' व 'समुद्र' दोनों ही अर्थ हुये। उपर्युक्त उद्धरण में 'उच्छलद्भूरि कीलालः' तथा 'वाहिनी पति' दोनों ही पूरे-पूरे पद हैं। इन दोनों पूरे-पूरे पदों में श्लेष नहीं है अपितु इनके एक अंश 'कीलालः' तथा 'वाहिनी' शब्दों में ही श्लेष हैं। ये दोनों ही शब्द समस्त पदों के खण्ड हैं। अतः यहाँ खण्डश्लेष अलंकार है।

भङ्गश्लेष—

भंगश्लेषः पदस्तोमस्यैव चेत् पृथगर्थता।
अजरामरता कस्य नायोध्येव पुरी प्रिया॥ ६४॥

सान्वय-लक्षण—(यत्र) पदस्तोमस्य एव पृथगर्थता (तत्र) भङ्गश्लेषः।

जहाँ पद समूह के द्वारा ही अनेक अर्थों का ज्ञान हो वहाँ भंगश्लेष अलंकार होता है।

उदाहरण - अजरामरता अयोध्यापुरी इव अजरामरता कस्य न प्रिया।

राम से प्रेम करने वाली अयोध्यापुरी के सदृश अजरता और अमरता किसे प्रिय नहीं है? यहाँ 'अजरामरता' पद-समूह के द्वारा अज तथा राम में अनुरक्त अयोध्या और अजरता एवं अमरता—विभिन्न अर्थों का स्पष्ट रूप से बोध हो रहा है। ये अर्थ 'अजरामरता' पद समूह को भंग करने से होते हैं अतः भंगश्लेष अलंकार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

खण्डश्लेष तथा भंगश्लेष अलंकारों में अन्तर

खण्डश्लेष	भङ्गश्लेष
(१) खण्ड श्लेष में समास के पादों को पृथक् पृथक् करके उनका अर्थ किया जाता है।	(१) भंगलेष में पदों को खण्डित करके उनका अर्थ किया जाता है।

अर्थश्लेष—

अर्थश्लेषोऽर्थमात्रस्य यद्यनेकार्थसंश्रयः ।
कुटिला श्यामला दीर्घा कटाक्षाः कुन्तलाश्च ते ॥६५॥

सान्वय-लक्षण—अर्थमात्रस्य यदि अनेकार्थसंश्रयः, अर्थश्लेषः ।

जिस वर्णन में केवल अर्थ में सम्वन्धित अनेक पदार्थों से सम्बद्ध अर्थ का प्रतिपादन किया गया वहाँ अर्थश्लेष अलंकार होता है।

उदाहरण—ते कटाक्षाः कुन्तलाः च कुटिलाः श्यामलाः दीर्घाः ।

तुम्हारे कटाक्ष और केश कुटिल (टेढ़े तथा घुँघराले), काले और दीर्घ (लम्बे) हैं। यहाँ कुटिल, श्यामल और दीर्घ शब्दों के अर्थ कटाक्ष तथा केश दोनों ही सम्वद्ध हैं। तात्पर्य यह है कि तीनों शब्दों केअर्थ दो दो नहीं है अपितु इनका एक ही अर्थ कटाक्ष अथवा बाल दोनों ही घटता है। यहाँ केवल अर्थ के द्वारा ही श्लेषमूलक चमत्कार है। अतः यहाँ अर्थश्लेष अलङ्कार है।

श्लेष तथा समासोक्ति अलंकारों में अन्तर

श्लेष	समासोक्ति
(१) 'श्लेष' में विशेषण तथा विशेष्य दोनों को २ प्रकार के अर्थ-बोध करते हैं।	(१) 'समासोक्ति' में केवल विशेषण ही दो अर्थों वाले होते हैं।
(२) 'श्लेष' में दोनों अर्थ वाच्य होते हैं तथा प्रस्तुत भी।	(२) 'समासोक्ति' में केवल प्रकृत अथवा उपमेय-अर्थ वाच्य होता है तथा अप्रकृत या उपमान सदैव व्यंग्य होता हैं।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अप्रस्तुतप्रशंसा—

अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात् सा यत्र प्रस्तुतानुगा ।
कार्यकारणसामान्यविशेषादेरसौ मता ॥ ६६ ॥

सान्वय-लक्षण—सा अप्रस्तुतप्रशंसा यत्र प्रस्तुतानुगा स्यात् । कार्य कारणसामान्यविशेषादेः असौ मता ।

अप्रस्तुत वर्णन जहाँ प्रस्तुत का अनुमान करता हो अथवा अप्रस्तुत पदार्थ का वर्णन जहाँ प्रस्तुत पदार्थ की भी अभिव्यक्ति कराये वहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार होता है। कार्य, कारण, सामान्य और विशेष आदि के कारण यह पांच प्रकार का माना गया है।

उदाहरण—

कमलैः कमलवासैः किं किं नासादि सुन्दरम् ।
अप्यम्बुधेः परं पारं प्रयान्ति व्यवसायिनः ॥ ६७ ॥

अन्वय—कमलावासैः कमलैः किं किं सुन्दरं न आसादि ।
व्यवसायिनः अम्बुधेः परं पारं अपि प्रयान्ति ॥

इस उदाहरण की प्रथम पंक्ति में सामान्य अप्रस्तुत के वर्णन द्वारा विशेष प्रस्तुत का आक्षेप किया गया है। "लक्ष्मी का निवास स्थल होने के कारण कमलों ने कौन सा सौन्दर्य नहीं प्राप्त कर लिया।" यहाँ अप्रस्तुत सामान्य कमल का वर्णन किया गया है जो अप्रस्तुत तथा वाच्य अर्थ है। इस अप्रस्तुत वर्णन द्वारा एक प्रस्तुत अर्थ की भी प्रतीति हो रही है—"जिनके पास लक्ष्मी का वास है ऐसे धनिक पुरुषों के लिये संसार में कौन सी वस्तु प्राप्त करना कठिन है?" यहाँ धनिक रूप अर्थ प्रस्तुत है जो "कमलावासैः" इस पद के श्लिष्ट रहने से निकलता है। इस प्रकार यहाँ श्लेष द्वारा अप्रस्तुत अर्थ की प्रतीति हो रही है। अतएव यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

इस भाँति उपर्युक्त उदाहरण सम्बन्धी श्लोक की द्वितीय पंक्ति में विशेष अप्रस्तुत द्वारा सामान्य प्रस्तुत का आक्षेप किया गया है। इस पंक्ति का अर्थ है—"उद्योगी पुरुष समुद्र के उस पार भी चले जाते हैं"। यहाँ समुद्र

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

गमन-रूप अप्रस्तुत विशेष वृत्तान्त के द्वारा प्रस्तुत सामान्य "उद्योगी पुरुष के लिये कुछ भी असंभव नहीं है" इस अर्थ की अभिव्यक्ति व्यञ्जना द्वारा करायी गयी है। अतः यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है। यहाँ प्रस्तुत का ज्ञान सादृश्य के कारण हो रहा है।

अप्रस्तुतप्रशंसा और समासोक्ति अलंकारों में अन्तर

अप्रस्तुतप्रशंसा	समासोक्ति
(१) 'अप्रस्तुतप्रशंसा' में वाच्य अर्थ अप्रस्तुत होता है तथा इस अप्रस्तुत वाच्यार्थ द्वारा व्यंग्य (व्यंजना शक्ति द्वारा निकलने वाला अर्थ) प्रस्तुत का द्योतक होता है।	(१) समासोक्ति में वाच्य-अर्थ प्रस्तुत रहता है तथा वह अप्रस्तुत अर्थ की प्रतीति (व्यंजना शक्ति, द्वारा) कराता है।
(२) जब अप्रस्तुतप्रशंसा श्लेष पर आधारित रहती है, तब वहाँ कभी कभी विशेषण, कभी २ विशेष्य, दोनों दो प्रकार के अर्थों के बतलाने वाले होते हैं।	(२) किन्तु समासोक्ति, अलंकार जब श्लेष पर आधारित होगा तब केवल विशेषण दो अर्थों वाले होगें।

अप्रस्तुतप्रशंसा तथा श्लेष अलंकारों में अन्तर

अप्रस्तुतप्रशंसा	श्लेष
(१) 'अप्रस्तुतप्रशंसा' में विशेषण और विशेष्य द्विविधि अर्थ रखते हैं तथा उनका भाव भी दो प्रकार का होता है किन्तु उनमें एक वाच्य तथा अप्रस्तुत रहता है तथा दूसरा व्यंग्य एवं प्रस्तुत।	(१) श्लेष में भी विशेषण और विशेष्य द्विविध अर्थ रखते हैं तथा उनका भाव भी दो प्रकार का होता है किन्तु वे दोनों वाच्य ही होती है। साथ ही इनका निर्णय करना कठिन भी होता है कि उनमें कौन सा प्रस्तुत है और कौन अप्रस्तुत। वस्तुतः दोनों को प्रस्तुत माना जाता है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अप्रस्तुतप्रशंसा तथा दृष्टान्त अलंकारों में अन्तर

अप्रस्तुतप्रशंसा	दृष्टांत
(१) 'अप्रस्तुत प्रशंसामें' वाच्यार्थ अप्रस्तुत होता है तथा प्रस्तुत व्यंग्य।	(१) 'दृष्टान्त' में प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनों वाक्य ही होते हैं।
(२) 'अप्रस्तुत प्रशंसा' में साधारण धर्म का केवल एक बार प्रयोग किया जाता है।	(२) 'दृष्टान्त' में साधारण धर्म का प्रयोग दोनों वाक्यों में पृथक्-पृथक् होता है।

अर्थान्तरन्यास—

भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थान्तराभिधा ।
हनूमानब्धिमतरद् दुष्करं किं महात्मनाम् ॥ ६८ ॥

सान्वय-लक्षण—अनुषक्तार्थान्तराभिधा अर्थान्तरन्यासः भवेत् ।

अनुषक्त अर्थात् सम्बन्धित मुख्य अर्थ का (प्रस्तुत अथवा प्रासङ्गिक अर्थ का) समर्थन अथवा पुष्टि करने के निमित्त जहाँ दूसरा अर्थ उदाहरण के रूप में उपस्थित कर दिया जाय वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।

उदाहरण—हनूमान्अब्धि अतरत्, महात्मनां दुष्करं किम् ।

हनुमान् समुद्र को पार कर गये, महात्माओं के लिये कौन-सा कार्य कठिन है ? यहाँ हनूमान द्वारा समुद्र का पार कर जाना मुख्य (विशेष) अर्थ है। उसका समर्थन करने के निमित्त 'महात्माओं के लिए कौन सा कार्य दुष्कर है ?" इस सामान्य अर्थ को उपस्थित किया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

अर्थान्तरन्यास तथा निदर्शना अलंकारों में अन्तर

अर्थान्तरन्यास	निदर्शना
(१) अर्थान्तरन्यास अलंकार में सामान्य-विशेषभाव और समर्थ्य-समर्थक भाव रहता है।	(१) निदर्शना अलंकार में भी सामान्य-विशेषभाव और समर्थ्य-समर्थक भाव रहता है।
(२) 'अर्थान्तरन्यास' का समर्थ्य-समर्थकभाव पथक्-पृथक् रूपों में रहता है।	(२) निदर्शना में दोनों वाक्यों में कार्यकारणभाव रहा करता है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अर्थान्तरन्यास और प्रतिवस्तूपमा अलंकारों में अन्तर

अर्थान्तरन्यास	प्रतिवस्तूपमा
(१) 'अर्थान्तरन्यास' में सामान्य द्वारा विशेष का समर्थन किया जाता है।	(१) 'प्रतिवस्तूपमा' में सामान्य से सामान्य का अथवा विशेष से विशेष का समर्थन किया जाता है।

अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त अलंकारों में अन्तर

अर्थान्तरन्यास	दृष्टान्त
(१) 'अर्थान्तरन्यास' का आरम्भ ही समर्थ्य-समर्थकभाव से होता है।	(१) 'दृष्टान्त' में मुख्य वस्तु-साम्य अथवा बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव होता है। समर्थ्य-समर्थक भाव तो बाद में आता है।

अर्थान्तरन्यास और काव्यलिंग में अन्तर

अर्थान्तरन्यास	काव्यलिंग
(१) 'अर्थान्तरन्यास' में दोनों वाक्य स्वतन्त्र तथा अपने आप में पूर्णतः सार्थक होते हैं।	(१) 'काव्यलिंग' में दोनों वाक्य परस्पर परतन्त्र होते हैं तथा एक का अर्थ बिना दूसरे की सहायता के नहीं जाना जा सकता है।
(२) अर्थान्तरन्यास' में एक वाक्य प्रस्तुत होता है तथा दूसरा अप्रस्तुत।	(२) काव्यलिंग में दोनों वाक्य प्रस्तुत परक होते हैं।
(३) 'अर्थान्तरन्यास' में एक कथन का प्रयोग दूसरे को समझने की दृष्टि से किया जाता है।	(३) 'काव्यलिंग' में वाक्यार्थ के द्वारा निष्पादक हेतु का बोध होता है।

विकस्वर—

यस्मिन् विशेषसामान्यविशेषाः स विकस्वरः।
स न जिग्ये महान्तो हि दुर्धर्षाः क्ष्माधरा इव ॥ ६९ ॥

सान्वय-लक्षण—यस्मिन् विशेषसामान्यविशेषाः सविकस्वरः।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जिस रचना में प्रस्तुत विशेष अर्थ का समर्थन सामान्य का अर्थ द्वारा किया जाय और फिर उस सामान्य को पुष्ट करने के लिये विशेष अर्थ का वर्णन किया जाय वहाँ 'विकस्वर' अलंकार होता है।

उदाहरण—स न जिग्ये, हि महान्तः क्ष्माधराः इव दुर्धर्षाः।

वह राजा किसी के द्वारा नहीं जीता जा सका, क्योंकि महान् पुरुष पर्वतों के समान दुर्जेय होते हैं। यहां राजा की दुर्जेयता का विशेष रूप से वर्णन किया गया है। इस विशेष का समर्थन "महान् पुरुष दुर्जेय होते हैं" इस सामान्य कथन द्वारा किया गया है। इसे पुनः दृढ़ करने के लिए "जैसे पर्वत दुर्जेय होते हैं" इस विशेष कथन का प्रयोग किया गया है। अतः यहाँ 'विकस्वर' अलंकार है।

पर्यायोक्ति—

कार्याद्यैः प्रस्तुतैरुक्ते पर्यायोक्तिं प्रचक्षते।
तृणान्यङ्कुरयामास विपक्षनृपसद्मसु ॥ ७० ॥

सान्वय-लक्षण—प्रस्तुतैः कार्याद्यैः उक्ते पर्यायोक्तिं प्रचक्षते।

जहाँ प्रस्तुत कार्य आदि के द्वारा प्रस्तुत कारण आदि की (व्यञ्जना द्वारा) प्रतीति होती है वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण—(हे राजन्!) विपक्षनृपसद्मसु तृणानि अङ्कुरयामास।

हे राजन्! आपने शत्रु राजाओं के भवनों में घास उगा दी। यहाँ शत्रु राजाओं के घर में घास उगा देना कार्य है जो प्रस्तुत है। मकान में घास तभी उगा करती है जब कि उसका कोई देखभाल करनेवाला न हो। वस्तुतः गृह-स्वामी के नष्ट हो जाने पर ही सुरक्षा के अभाव में, गृह खंडहर हो जाया करता है और उस समय घास का उग आना स्वाभाविक ही है। अतः घास उग आने का कारण शत्रु राजाओं का मरण है, जो प्रस्तुत है। "शत्रु राजाओं के घर में घास उगा देना" इस प्रस्तुत कार्य द्वारा "शत्रु राजाओं का मरण" इस प्रस्तुत कारण की व्यञ्जना हो रही है। अतः यहाँ पर्यायोक्ति अलंकार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पर्यायोक्ति तथा अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकारों में अन्तर

पर्यायोक्ति	अप्रस्तुत प्रशंसा
(१) 'पर्यायोक्ति' में वाच्य-अर्थ तथा व्यंग्य-अर्थ सदैव प्रस्तुत रहते हैं।	'अप्रस्तुत प्रशंसा' में वाच्य-अर्थ प्रस्तुत एवं व्यंग्य-अर्थ अप्रस्तुत होता है।

व्याजस्तुति—

उक्तिर्व्याजस्तुतिर्निन्दास्तुतिभ्यां स्तुतिनिन्दयोः ।
कस्ते विवेको नयसि स्वर्गं पातकिनोऽपि यत् ॥ ७१ ॥

सान्वय-लक्षण—निन्दास्तुतिभ्यां स्तुतिनिन्दयोः उक्तिः व्याजस्तुतिः ।

जहाँ निन्दा तथा स्तुति के द्वारा क्रमशः स्तुति और निन्दा का वर्णन किया जाय वहाँ व्याजस्तुति अलकार होता है।

उदाहरण—(हे गंगे !) ते कः विवेकः यत् पातकिनः अपि स्वर्गं नयसि ।

हे गङ्गे ! तेरा यह कौन-सा विवेक है कि जो तू पापियों को भी स्वर्ग ले जाती है। यहाँ "तुममें कुछ भी बुद्धिमत्ता नहीं है" कहकर गंगा की निन्दा की गई है। इस निन्दा के बहाने (व्याज से) 'पक्षपातरहित होकर तुम पुण्यात्माओं की ही भाँति पापियों को भी स्वर्ग ले जाती हो 'इस प्रकार की गंगा की प्रशंसा ही की गई है। अतः व्याज रूप निन्दा के द्वारा स्तुति का वर्णन होने के कारण यहाँ व्याजस्तुति अलंकार है।

व्याजस्तुति तथा पर्यायोक्ति अलंकारों में अन्तर

व्याजस्तुति	पर्यायोक्ति
(१) व्याजस्तुति में वाच्य और व्यंग्य दो अर्थ होते हैं किन्तु उनमें निन्दा-स्तुति अथवा स्तुति-निन्दा सम्बन्ध होता है।	(१) पर्यायोक्ति में भी वाक्य एवं व्यंग्य दो अर्थ होते हैं किन्तु उनमें कार्य कारण सम्बन्ध रहता है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

व्याजस्तुति और अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकारों में अन्तर

व्याजस्तुति	अप्रस्तुतप्रशंसा
(१) 'व्याजस्तुति' में भी अलंकारात्मक सौन्दर्य अप्रस्तुत के प्रकाशन में ही रहता है। किन्तु यह अप्रस्तुत निन्दा से स्तुति के व्यञ्जन में तथा स्तुति से निन्दा के व्यंजन में रहा करता है। अतः इसमें अप्रस्तुत प्रशंसा की अपेक्षा एक विशिष्ट प्रकार का चमत्कार आ जाता है।	(१) 'अप्रस्तुतप्रशंसा' का सौन्दर्य अप्रस्तुत के प्रकाशन में होता है।

आक्षेप—

आक्षेपस्तु प्रयुक्तस्य प्रतिषेधो विचारणात्।
चन्द्र ! संदर्शयात्मानमथवास्ति प्रियामुखम् ॥ ७२ ॥

सान्वय-लक्षण—प्रयुक्तस्य विचारणात् प्रतिषेधः आक्षेपः।

जिस रचना में उपमान के रूप में प्रयोग किये गये किसी पदार्थ का किसी कारण विशेष का विचार कर, निषेध किया गया हो वहाँ आक्षेप अलङ्कार होता है।

उदाहरण—हे चन्द्र ! आत्मानं संदर्शय, अथवा प्रियामुखं अस्ति।

हे चन्द्र ! अथवा मुख दिखाओं, अथवा (रहने भी दो) प्रिय का मुख तो है ही। यहाँ 'चन्द्र' उपमान है तथा 'प्रिया का मुख' उपमेय। प्रार्थी द्वारा पहले चन्द्रमा से अपने को दिखलाने के निमित्त प्रार्थना की गयी किन्तु तुरन्त ही विचार करने पर उसे ध्यान आता है कि चन्द्र दर्शन की अपेक्षा प्रेयसी का मुख देखने में चन्द्रमा के आह्लादकत्व की अपेक्षा अधिक आनन्द की उपलब्धि होगी। ऐसी स्थिति में जब उसे प्रेमिका का मुख ही देखने को मिल रहा है तब वह चन्द्र दर्शन क्यों करें? इस प्रकार उसके लिए चन्द्र-दर्शन व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। अतः वह चन्द्र दर्शन का निरोध करता है (तात्पर्य यह है कि प्रतिषेध द्वारा उपमान की अपेक्षा उपमेय का उत्कर्ष प्रकट किया गया है) अतएव यहाँ आक्षेप अलङ्कार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विशेष—इस अलङ्कार में यह ध्यान देने योग्य बात है कि इसमें वस्तुतः निषेध नहीं किया जाता है, निषेध का आभासमात्र ही होता है। अर्थात् निषेध के बहाने से प्रतिपाद्य विशेष अर्थ की प्रतीति ही होती है।

गूढाक्षेप—

गूढाक्षेपो विधौ व्यक्ते निषेधे चास्फुटे सति।
हर सीतां सुखं, किंतु चिन्तयान्तकढौकनम् ॥ ७३ ॥

सान्वय-लक्षण—विधौ व्यक्ते निषेधे च अस्फुटे गूढाक्षेपः।

जहाँ विधि अर्थात् विधान का प्रयोग अत्यन्त स्पष्ट हो तथा निषेध स्पष्ट न हो, वहाँ गूढाक्षेप अलंकार होता है।

उदाहरण—सुखं सीतां हर, किन्तु अन्तकढौकनं चिन्तय।

(यहाँ मारीच रावण से कह रहा है) हे रावण ! तुम सीता का हरण सुख पूर्वक करो किन्तु यमराज के समीप पहुँचने का भी विचार कर लेना। यहाँ सीता के हर लेने का विधान अत्यन्त स्पष्ट है। किन्तु "सीता हरण के पश्चात् यमलोक में जाना पड़ेगा अतः यह विचार छोड़ दो" इस निषेध की प्रतीति स्पष्टतया नहीं हो रही है। अतः यहाँ गूढाक्षेप अलङ्कार है।

विरोध—

विरोधोऽनुपपत्तिश्चेद् गुणद्रव्यक्रियादिषु।
अमन्दचन्दनस्यन्दः स्वच्छन्दं दन्दहीतिमाम् ॥ ७४ ॥

सान्वय-लक्षण—चेत् गुणद्रव्यक्रियादिषु अनुपपत्तिः विरोधः ॥

जहाँ गुण, द्रव्य, क्रिया तथा जातिवाचक पदार्थों का परस्पर विरोध बतलाया गया हो, वहाँ विरोध अलङ्कार होता है।

उदाहरण—अमन्दचन्दनस्यन्दः स्वच्छन्दं मां दन्दहीति।

(कोई विरहिणी नायिका कह रही है) चन्दन का यह अत्यधिक लेप मुझे स्वच्छन्द रूप से भलीभाँति जला रहा है। यहाँ 'अमन्द' (अत्यधिक) गुण है, चन्दनत्व जाति है। 'चन्दन' द्रव्य है तथा स्यन्द (बहना) क्रिया है। इन सब में दाहकता शक्ति का पूर्णरूपेण अभाव है। अतः इन सबका दहन-क्रिया के साथ विरोध है। किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में यह बात विरहिणी स्त्री के

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सम्बन्ध में कही गई है अतः विरोध का भाव अधिक देर तक न रहकर तुरन्त ही मिट जाता है। अतएव उपर्युक्त उदाहरण में विरोध अलंकार है।

विशेष—इस अलंकार में विरोध वास्तविक नहीं होता है, केवल उसकी प्रतीति मात्र होती है, अतः परिहार होता जाता है। विरोध करने के अनन्तर विरोध की स्थिति ही नहीं रह जाती है। अतः विरोध का आभास मात्र होने के कारण इसे कुछ आचार्यों ने 'विरोधभास' नाम से भी कहा है। किन्तु जयदेव ने अपने इस चन्द्रालोक में विरोध तथा विरोधाभास दोनों अलंकारों के पृथक् पृथक् नाम देकर दो अलंकारों के रूप में कहा है।

विरोधभास—

श्लेषादिर्भूर्विरोधश्चेद् विरोधाभासता मता।
अप्यन्धकारिणानेन जगदेतत् प्रकाश्यते ॥ ७५ ॥

सान्वय-लक्षण—चेत् श्लेषादि भूः विरोधः (तदा) विरोधाभासता मता।

जिस रचना में श्लेष आदि के कारण विरोध की प्रतीति होती हो अर्थात् वास्तविक विरोध तो न हो केवल किसी पद का श्लिष्ट अर्थ कर देने मात्र से विरोध की छाया-सी प्रतीत हो तो वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है।

उदाहरण—अन्धकारिणा अपि अनेन एतत् जगत् प्रकाश्यते।

अन्धकार करनेवाले (भगवान शिव) के द्वारा यह जगत प्रकाशित होता है। किन्तु जो अन्धकार का कर्ता है, वह संसार का प्रकाशक कैसे हो सकता है? यह विरोध उत्पन्न होता है। किन्तु यहाँ 'अन्धकारि' शब्दश्लिष्ट होने के कारण यह विरोध स्वयं समाप्त हो जाता है। 'अन्धंकरोतीति' यह अर्थ करने पर तो 'अन्धकार करनेवाला' ही अर्थ होता है जो विरोध का द्योतक है किन्तु अन्धक + अरि अर्थात् अन्धकासुर का शत्रु 'शिव' अर्थ लेने से उपर्युक्त उदाहरण का यह अर्थ हो जाता है कि "इन शिव के द्वारा यह जगत प्रकाशित किया जाता है" ऐसी स्थिति में विरोध के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता। अतः यहाँ वस्तुतः विरोध न होकर उसका आभास-मात्र ही दृष्टिगोचर होने से विरोधाभास अलंकार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विरोध तथा विरोधाभास अलंकारों में अन्तर

विरोध	विरोधाभास
(१) विरोध अलंकार में विरोध श्लेष द्वारा अनुप्राणित नहीं होता है।	(१) विरोधाभास में तो विरोध श्लेष मूलक होता है।

असंभव—

असंभवोऽर्थनिष्पत्तावसंभाव्यत्ववर्णनम् ।
को वेद गोपशिशुकः शैलमुत्पाटयिष्यति ॥ ७६ ॥

सान्वय-लक्षण—अर्थनिष्पत्तावसंभाव्यत्ववर्णनम् असंभवः।

जहाँ किसी पदार्थ के निर्माण अथवा उसकी उत्पत्ति के विषय में असंभवनीयता का वर्णन किया जाय वहाँ असंभव अलंकार होता है। अथवा (अर्थनिष्पत्तौ) अर्थ की निष्पत्ति अर्थात् कार्य के हो जाने पर उसके असंभाव्यत्व का वर्णन जहाँ किया जाये वहाँ उक्त अलंकार होता हैं।

उदाहरण--गोपशिशुकः शैलमुत्पाटयिष्यति, को वेद।

गोप का यह छोटा सा बालक (कृष्ण) पर्वत को उठा लेगा, यह कौन जानता था ? यहाँ प्रस्तुत अर्थ है "पर्वत का उठाया जाना" परन्तु यह कार्य एक छोटे से बालक के द्वारा होना असंभव है, इस प्रकार इस अर्थ की असंभवनीयता का वर्णन किया गया है। अतः यहाँ असंभव अलंकार है।

अथवा—कृष्ण द्वारा "पर्वत उठा लेने" रूपी कार्य की निष्पत्ति हो जाने पर ही उपर्युक्त प्रकार से असंभाव्यत्व का वर्णन किया गया है। अतः यहाँ उक्त अलंकार है।

विभावना—

विभावना विनापि स्यात् कारणं कार्यजन्म चेत् ।
पश्य, लाक्षारसासिक्तं रक्तं त्वच्चरणद्वयम् ॥ ७७ ॥

सान्वय-लक्षण—चेत कारणं विना अपि कार्यजन्म स्यात् विभावना।

जहाँ प्रसिद्ध कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति का वर्णन किया जाय वहाँ विभावना अलंकार होता है।

उदाहरण--पश्य लाक्षारसासिक्तं त्वत्चरणद्वयं रक्तम्।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

देखो, लाक्षारस (महावर अथवा अलता) विना लगाये होने पर भी तुम्हारे दोनों चरण लाल हैं।

उपर्युक्त उदाहरण में "अलता अथवा महावर लगाने"—कारण का वर्णन नहीं किया गया है किन्तु उससे होने वाले कार्य"—"दोनों चरणों का लाल होना"—वर्णित है। इस भाँति कारण के न होने पर भी यहाँ कार्य हो जाने का वर्णन किया गया है। अतः विभावना अलङ्कार है।

विशेषोक्ति—

विशेषोक्तिरनुत्पत्तिः कार्यस्य सति कारणे।
नमन्तमपि धीमन्तं न लङ्घयति कश्चन ॥ ७८ ॥

सान्वय-लक्षण—कारणे सति कार्यस्य अनुत्पत्तिः, विशेषोक्तिः।

जिस रचना में कारण रहने पर भी कार्य के होने का वर्णन न किया गया हो, वहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार होता है।

उदाहरण—नमन्तं अपि धीमन्तं कश्चन न लङ्घयति।

नम्र होने पर भी बुद्धिमान पुरुष को कोई नहीं लांघता है। नम्र होने का अर्थ है झुका हुआ, नीचा। झुकी हुई अथवा नीची वस्तु को सभी लाँघ जाया करते हैं। यहाँ बुद्धिमान पुरुष नम्र है (यह कारण है) किन्तु फिर भी उसे कोई नहीं लाँघता है (यह कार्य है)। नम्र रूप कारण की स्थिति होने पर भी लङ्घन रूप कार्य के न होने का वर्णन किये जाने से यहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार है।

विशेषोक्ति और विभावना अलंकारों में अन्तर

विशेषोक्ति	विभावना
(१) 'विशेषोक्ति' में कारण के विद्यमान होने पर भी कार्य के न होने का वर्णन किया जाता है।	(१) 'विभावना' में कारण के उपस्थित न होने पर भी कार्य की उत्पत्ति का वर्णन किया जाता है।
(२) विशेषोक्ति में चमत्कार का दर्शन कार्य के अभाव में होता है।	(२) 'विभावना' में चमत्कार का दर्शन कार्य के अभाव में होता है।

विशेष—विशेषोक्ति, विभावना का एक दम विपरीत उलटा अलङ्कार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विशेषोक्ति, विभावना और विरोध—विरोधाभास इन चारों अलंकारों में अन्तर

यद्यपि उपर्युक्त चारों अलंकारों में विरोध का दर्शन होता है किन्तु उस विरोध का किसी न किसी रूप में परिहार भी हो जाया करता है। इतना होने पर भी इन अलंकारों में पर्याप्त अन्तर है।

विशेषोक्ति	विभावना	विरोध	विरोधाभास
(१) 'विशेषोक्ति' का क्षेत्रसंकुचित है इसमें विरोध केवल कारण एवं कार्य-परक ही होता है।	(१) 'विभावना' का भी क्षेत्र सीमित है। इसमें विरोध केवल कार्यकारण-परक ही होता है।	(१) 'विरोध' अलंकार का क्षेत्र विस्तृत है। विरोध के सब प्रकारों में इसकी पहुँच होती है।	(१) विरोधाभास का भी क्षेत्र विस्तृत है। इसमें भी विरोध की पहुँच सब प्रकारों में हो सकती है।
(२) 'विशेषोक्ति' में कारण के रहने पर भी कार्य की उत्पत्ति नहीं होती है। अतः इसमें कार्याभाव बाधक होता है। तथा कारण बाध्य।	(२) विभावना' में कारण के न होने पर भी कार्य की उत्पत्ति होती है। अतः इसमें कारणाभाव बाधक होता है तथा कार्य बाध्य।	(२) विरोधमें दोनों पदार्थ, जिनमें विरोध रहता है अथवा दिखलाया जाता है, समान रूप से प्रभावशाली होते हैं और इसी कारण दोनों बाध्य होते हैं।	(२) विरोधाभास में भी दोनों पदार्थ, जिनमें विरोध रहता है अथवा दिखलाया जाता है, समान रूप से प्रभावशाली होते हैं और इसी कारण दोनों बाध्य होते हैं।

असंगति—

आख्याते भिन्नदेशत्वे कार्यहेत्वोरसङ्गतिः।
त्वद्भक्तानां नमत्यङ्गं भङ्गमेति भवक्लमः ॥ ७९ ॥

सान्वय-लक्षणः—कार्यहेत्वोः भिन्नदेशत्वे आख्याने असंगतिः।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जिस रचना में कार्य और कारण की स्थिति दो भिन्न स्थानों में बताई गयी हो वहाँ असंगति अलंकार होता है।

उदाहरण--'त्वद्भक्तानां अङ्गं नमति, भवक्लमः भङ्गमेति'

हे ईश्वर ! तुम्हारे भक्तों का शरीर झुकता है। (अर्थात् भक्तिभाव से नत हो जाता है) और सांसारिक दुःखों का विनाश हो जाता है। भक्त प्रभु की वन्दना करते हैं जिससे सांसारिक दुःख मिट जाते हैं। यहाँ सांसारिक दुःखों का विनष्ट हो जाना कार्य तथा उसका कारण हैं प्रभु-वन्दन। इस कारण रूप नमस्कार की स्थिति भक्तों में है तथा सांसारिक दुःखों के विनष्ट होने रूप कार्य की स्थिति संसार है। इस भाँति कार्य तथा कारण दोनों की स्थिति विभिन्न स्थानों में है अतः यहाँ असंगति अलंकार है।

असंगति तथा विशेषोक्ति अलंकारों में अन्तर

असंगति	विशेषोक्ति
(१) 'असंगति' में कार्य तथा कारण दोनों रहते हैं किन्तु उनकी स्थिति भिन्न भिन्न स्थानों में हुआ करती है।	(१) 'विशेषोक्ति' में तो कारण की उपस्थिति होने पर भी कार्य की उत्पत्ति का वर्णन ही उपलब्ध नहीं होता है।
(२) 'असंगति' अलंकार का चमत्कार तथा सौन्दर्य कार्य एवं कारण की स्थितियों के विभिन्न स्थानों में होने में रहता है।	(२) 'विशेषोक्ति', अलंकार का चमत्कार तथा सौन्दर्य कारण के उपस्थित रहने पर भी कार्य की उत्पत्ति न होने में हो रहा करता है।

असंगति तथा विभावना अलंकारों में अन्तर

असंगति	विभावना
(१) 'असंगति' अलंकार का चमत्कार तथा सौन्दर्य कार्य एवं कारण की दो विभिन्न देशों में स्थिति होने में रहा करता है।	(१) 'विभावना' अलंकार का चमत्कार एवं सौन्दर्य कारण के अभाव में भी कार्य की उत्पत्ति हो जाने में रहा करता है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

असंगति तथा विरोध अलंकारों में अन्तर

असंगति	विरोध
(१) 'असंगति' में कार्य तथा कारण की स्थिति दो विभिन्न स्थानों पर हुआ करती है।	(१) 'विरोध में दो भिन्न स्थानों पर रहनेवाले दो पदार्थों की स्थिति एक ही स्थान पर दिखलाई जाती है।
(२) 'असंगति' में कार्य की उत्पत्ति का विचार होने के अनन्तर ही विरोध की प्रतीति हुआ करती है।	(२) 'विरोध' में कार्य के उत्पन्न होने का विचार होने से पूर्व ही विरोध का अभास होने लगा करता है।

विषमम्--

विषमं यद्यनौचित्यादनेकान्वयकल्पनम्।
क्वातितीव्रविषाः सर्पाः क्वासौ चन्दनभूरुहः॥ ८०॥

सान्वय लक्षण—यदि अनौचित्यात् अनेकान्वयकल्पनं (क्रियेत्) विषमम्।

यदि अनुचित रूप से अनेक भिन्न-भिन्न पदार्थों का अन्वय एक स्थान पर दिखलाकर उनमें एक सम्बन्ध की कल्पना की जाय तो वहां विषम अलंकार होता है।

उदाहरण--अतितीव्रविषाः सर्पाः क्व ? असौ चन्दनभूरुहः क्व ?

अधिक तीव्र विष को धारण करनेवाले सर्प कहाँ और कहाँ यह चन्दन का (शीतल) वृक्ष ? यहाँ 'सर्प की तीव्र विषता' तथा 'चन्दन को अतिशीतलता'—इन दो परस्पर विरोधी धर्मों का एक सम्बन्ध बतलाया गया है। अतः यहाँ विषम अलंकार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विषम, विरोध असंगति अलंकारों में अन्तर

विरोध	असंगति	विषम
(१) 'विरोध' अलङ्कार में दो विभिन्न स्थानों में रहनेवाले पदार्थों को एक स्थान पर दिखलाया जाता है।	(१) 'असङ्गति' में कार्य-कारण सम्बन्ध वाले दो पदार्थों का (जिनकी स्थिति एक ही स्थान पर होना आवश्यक है) दो भिन्न स्थानों में होना वर्णित होता है।	(१) 'विषम' अलङ्कार में अनेक भिन्न पदार्थों का (गुण, क्रिया आदि का) अन्वय एक स्थान पर कर उसमें एक सम्बन्ध की कल्पना की जाती है।

समम्—

समौचित्यतोऽनेकवस्तुसम्बन्धवर्णनम् ।
अनुरूपं कृतं सद्म हारेण कुचमण्डलम् ॥ ८१ ॥

सान्वय-लक्षण—औचित्यतः अनेकवस्तुसम्बन्धवर्णनम् समम् ।

जहाँ उचित रीति से अनेक प्रकार की वस्तुओं के सम्बन्ध का वर्णन किया जाय वहाँ सम अलंकार होता है।

उदाहरण—हारेण कुचमण्डलम् अनुरूपं सद्म कृतम् ।

(नायिका के कण्ठ में स्थित) हार ने स्तनमण्डल को अपने योग्य घर (निवास स्थान) बना लिया है।

यहाँ पर 'हार' तथा 'कुचमण्डल' इन दो भिन्न पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध उचित ढङ्ग से दिखलाया गया है, अतः सम अलंकार है।

विचित्रम्—

विचित्रं चेत् प्रयत्नः स्याद् विपरीतफलप्रदः ।
नमन्ति सन्तस्त्रैलोक्यादपि लब्धुं समुन्नतिम् ॥ ८२ ॥

सान्वय-लक्षण—चेत् विपरीतफलप्रदः प्रयत्नः स्यात् विचित्रम् ।

जहाँ विपरीत (उलटा) फल देनेवाले प्रयत्न का वर्णन किया जाय, वहाँ विचित्र अलंकार होता है।

उदाहरण—सन्तः त्रैलोक्यादपि समुन्नतिं लब्धुं नमन्ति ॥

सज्जन पुरुष तीनों लोकों से भी अधिक उन्नति प्राप्त करने के लिए नम्र हो

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जाते हैं। वस्तुतः उन्नति के लिये उन्नति (ऊँचे) प्रयत्नों का किया जाना आवश्यक है किन्तु उक्त उदाहरण में विपरीत ही कार्य दृष्टिगोचर हो रहा है। सज्जन उन्नति के लिये नम्र (झुक रहे) हो रहे हैं। झुकना तथा उन्नत होना परस्पर विपरीत हैं। इस प्रकार यहाँ नमन से उन्नतिरूपी फल की प्राप्ति का विपरीत वर्णन किया गया है अतः विचित्र अलंकार है।

अधिकम्—

अधिकं बोध्यमाधारादाधेयाधिकवर्णनम् ।
यया व्याप्तं जगत् तस्यां वाचि मान्ति न ते गुणाः ॥ ८३ ॥

सान्वय लक्षण—(यत्र) आधारात् आधेयस्य वर्णनम् अधिकं (तत्र) अधिकं बोध्यम् ।

जहाँ आधार से आधेय का वर्णन अधिक किया जाय वहाँ अधिक अलंकार होता है।

उदाहरण—यया जगत् व्याप्तं तस्यां वाचि ते गणाः न मान्ति ।

हे भगवन् ! जिस वाणी से समस्त संसार व्याप्त है, उस वाणी में तुम्हारे गुणा नहीं समा रहे हैं। यहाँ वाणी आधार है तथा गुण आधेय हैं। वाणी का क्षेत्र अधिक विस्तृत है वह समस्त संसार में व्याप्त हैं किन्तु आधार-रूप उस वाणी में आधेय-रूप गुण नहीं समा रहे हैं। अतः अधिक अलंकार है।

अधिक और विषम अलङ्कार में अन्तर

अधिक	विषम
(१) 'अधिक' अलंकार में दोनों पदार्थों का सम्बन्ध आश्रय एवं आश्रयी के रूप में होता है तथा एक दूसरे को अपेक्षा विस्तार में भी अधिक होता है।	(१) 'विषम' में दोनों पदार्थ पूर्णतः भिन्न तथा परस्पर निरपेक्ष होते हैं किन्तु फिर भी उनमें सम्बन्ध दिखलाया जाता है।
(२) आश्रय अथवा आश्रयी की अपेक्षा आश्रयी अथवा आश्रय की विशालता के वर्णन में इस अलंकार का चमत्कार दृष्टिगोचर होता है।	(२) 'विषम' अलंकार का चमत्कार अथवा सौन्दर्य दो परस्पर भिन्न पदार्थों के योग में हुआ करता है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अन्योन्यम्—

अन्योन्यं नाम यत्र स्यादुपकारः परस्परम् ।
त्रियामा शशिना भाति शशी भाति त्रियामया ॥८४॥

सान्वय-लक्षण—यत्र परस्परं उपकारः स्यात् (तत्र) अन्योन्यं नाम ।

जहाँ (एक ही वाक्य में) दो वर्णनीय पदार्थों का वर्णन एक दूसरे के उपकारक के रूप में किया गया हो, वहाँ अन्योन्य अलंकार होता है ।

उदाहरण—त्रियामा शशिना भाति, शशी भाति त्रियामया ।

रात्रि चन्द्रमा से सुशोभित होती है और चन्द्रमा रात्रि से सुशोभित होता है । यहाँ चन्द्रमा रात्रि का उपकारक है तथा रात्रि चन्द्रमा की उपकारिका है । अतः यहाँ अन्योन्य अलंकार है ।

विशेष—

विशेषः ख्यातमाधारं विनाप्याधेयवर्णनम् ।
गतेऽपि सूर्ये दीपस्थास्तमश्छिन्दन्ति तत्कराः ॥ ८५ ॥

सान्वय लक्षण—ख्यातम् आधारं विना अपि आधेयवर्णनं विशेषः ।

जहाँ प्रसिद्ध आधार के बिना भी आधेय का वर्णन किया जाय वहाँ विशेष अलंकार होता है ।

उदाहरण—सूर्ये गतेऽपि दीपस्थाः तत्कराः तमः छिन्दन्ति ।

सूर्य के चले जाने (अस्त हो जाने) पर भी दीपक में स्थित उसकी किरणें अन्धकार का विनाश करती ही हैं ।

यहाँ सूर्य आधार है तथा उसकी किरणें आधेय । प्रसिद्ध आधार-सूर्य के बिना भी आधेय उसकी किरणों का वर्णन किया गया है । अतः यहाँ विशेष अलंकार हैं ।

विशेष तथा अलंकारों में अन्तर

विशेष	अधिक
(१) 'विशेष' में प्रसिद्ध आधार के न होने पर भी आधेय का वर्णन किया जाता है ।	(१) 'अधिक' में तो आधार एवं आधेय दोनों की उपस्थिति आवश्यक है । साथ ही उसमें आधार की अपेक्षा आधेय का वर्णन अधिक किया जाता है ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

व्याघात—

स्याद् व्याघातोऽयथाकारि वस्त्वन्यक्रियमुच्यते ।
यैर्जगत् प्रीयते हंति तैरेव कुसुमायुधः ॥ ८६ ॥

सान्वय-लक्षण :—अन्यक्रियं वस्तु अयथाकारि उच्यते, व्याघातः स्यात् ।

जहाँ किसी दूसरे प्रकार की क्रियाओं के करने में समर्थ वस्तुका वर्णन उस वस्तु के कार्य के विरुद्ध कार्य उत्पन्न करे, वहाँ व्याघात अलंकार होता है। तात्पर्य यह है कि स्वभावतः अन्य प्रकर के कार्य करनेवाली किसी वस्तु का वर्णन इस ढंग से किया जाय कि वह अपने स्वभाव के विरुद्ध कार्य करें तो वहाँ व्याघात अलंकार होता है।

उदाहरण—यैः जगत् प्रीयते तैरेव कुसुमायुधः हन्ति ।

जिन पुष्पों के द्वारा संसार प्रसन्नता का अनुभव किया करता है उन्हीं पुष्पों से कामदेव मारता है। वस्तुतः पुष्पों का स्वाभाविक गुण है—प्रसन्नता प्रदान करना। किन्तु उक्त उदाहरण में पुष्प अपने कार्य के विरुद्ध मारने रूप कार्य में संलग्न वर्णित किया गया है अतः यहाँ व्याघात अलंकार है।

कारणमाला—

गुम्फः कारणमाला स्याद् यथाप्राक्प्रान्तकारणैः ।
नयेन श्रीः श्रिया त्यागस्त्यागेन विपुलं यशः ॥८७॥

सान्वय-लक्षण—यथा प्राक्प्रान्तकारणैः गुम्फः कारणमाला स्यात् ।

जहाँ पहले आये हुए पद आगे आने वाले पदों के कारण हों वहाँ कारणमाला अलंकार होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जहाँ पदों को इस भाँति गूँथा गया हो कि जिससे प्रत्येक पहला पद बाद में अपने वाले पद का कारण हो।

उदाहरण—'नयेन श्रीः श्रिया त्यागः, त्यागेन विपुलं यशः'।

नीति से लक्ष्मी (सम्पत्ति), लक्ष्मी से त्याग तथा त्याग से महान् यश होता है। यहाँ नय, श्री, और त्याग यह तीनों पद अपने बाद में आने वाले श्री, त्याग और यश के कारण हैं। अतः कारणमाला अलंकार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

विशेष—इस अलंकार में कारणों की माला रहती है, इसी कारण इसका नाम कारणमाला है। किन्तु यहाँ प्रयुक्त 'माला' शब्द का अर्थ मालोपमा आदि में 'माला' शब्द जैसा नहीं है। यहाँ 'माला' शब्द का अर्थ रशना अथवा शृंखला के सदृश है।

एकावली—

गृहीतमुक्तरीत्यर्थश्रेणिरेकावली मता।
नेत्रे कर्णान्तविश्रान्ते कर्णौ दोर्मूलदोलिनौ ॥ ८८ ॥

सान्वय-लक्षण—गृहीतमुक्तरीत्यर्थश्रेणिः (गृहीता च मुक्ता च गृहीत-मुक्ता, सा चासौ रीतिस्तथा विबद्धा या अर्थानां श्रेणिः, गृहीतमुक्तरीत्यर्थश्रेणिः) एकावली मता।

एकावली शब्द का अर्थ है एक लड़ी की माला जैसे माला में एक मोती पकड़ कर पहले गूंथ दिया जाता है फिर उसे छोड़कर दूसरा पकड़ लिया जाया करता है, इस भाँति निरन्तर क्रम चलता है, इस भाँति इस अलंकार की भी गति है। इसमें पहले के पद बाद के पदों के या तो विशेषणरूप में आते हैं अथवा विशेष्यरूप अथवा इन दोनों रूपों में छोड़ दिये जाते हैं। हार में जिस भाँति रत्न ग्रथित रहा करते हैं, उस भाँति इस अलंकार में पदार्थों के विशेष्य-भाव अथवा विशेषण भाव के ग्रहण अथवा त्याग की अवली रहती है।

उदाहरण—नेत्रे कर्णान्तविश्रान्ते कर्णौ दोर्मूलदोलिनौ।

(उस राजा के नेत्र कान तक फैले हुए तथा कान कन्धे तक लटकने वाले अर्थात् विशाल हैं। यहाँ 'कर्णान्त' यह उत्तर पद पूर्वपद नेत्र का विशेषण बना है किन्तु बाद में वही पद विशेषण से हटकर विशेष्य बन गया है। इसी भाँति 'दोर्मूल०' उत्तर पद पहले पूर्वपद 'कर्ण' का विशेषण था किन्तु बाद में उसे विशेष्य बना दिया गया है। पूर्वपद के प्रति उत्तर पद की विशेषणता हटाकर उसमें विशेष्यता का स्थापन किये जाने से यहाँ एकावली अलंकार है।

एकावली अलंकार निम्न दो प्रकार की स्थितियों में होता है—

(१) पूर्व पूर्वपद के विशेषण—विशेष्य—भाव की स्थापना में।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(२) पूर्व पूर्वपद के विशेषण—विशेष्य—भाव के निवर्त्तन में। उपर्युक्त उदाहरण प्रथम प्रकार में है।

एकावली और कारणमाला अलंकारों में अन्तर

एकावली	कारणमाला
(१) 'एकावली' में पूर्व पदार्थ एवं उत्तर पदार्थ का सम्बन्ध विशेषण विशेष्यभाव—परक होता है।	(१) 'कारणमाला' में पूर्व पदार्थ एवं उत्तर पदार्थ का सम्बन्ध कार्य—कारण—भाव—परक होता है।
(२) 'एकावली' में प्रत्येक उत्तर पदार्थ प्रत्येक पूर्व पदार्थ का विशेषण होता है।	(२) 'कारणमाला' में प्रत्येक पूर्व पदार्थ प्रत्येक उत्तर पदार्थ के कारण रूप में वर्णित किया जाता है।

मालादीपकम्—

दीपकैकावलीयोगान् मालादीपकमुच्यते।
स्मरेण हृदये तस्यास्तेन त्वयि कृता स्थितिः ॥ ८९ ॥

सान्वय-लक्षण—दीपकैकावलीयोगात् मालादीपकम् उच्यते।

दीपक तथा एकावली दोनों अलंकारों का जहाँ एक साथ समावेश होता है वहाँ मालादीपक अलंकार होता है।

उदाहरण—स्मरेण तस्याः हृदये तेन त्वयिस्थितिः कृता।

किसी नायिका की दूती नायक के प्रति कह रही है—कामदेव ने उस नायिका के हृदय में निवास कर लिया है तथा उस नायिका के हृदय ने तुम्हारे अन्दर अपनी स्थिति कर ली है। यहाँ "स्थितिः कृता" (स्थान कर लिया है) इस क्रिया का अन्वय कामदेव तथा नायिका के हृदय दोनों के साथ होने से दीपक अलंकार है। इसके अतिरिक्त पहले नायिका के हृदय को कामदेव ने निवास-स्थान के रूप में ग्रहण किया फिर नायक को आधार बनाकर नायिका के हृदय रूप आधार का त्याग किया। अतः ग्रहण एवं त्याग

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

होने से यहाँ एकावली अलंकार है। दोनों अलंकारों का प्रयोग एक ही वाक्य में होने से उपर्युक्त श्लोकार्ध में मालादीपक अलंकार हुआ।

मालादीपक तथा एकावली अलंकारों में अन्तर

मालादीपक	एकावली
(१) 'मालादीपक' में पहले आये हुये पदार्थ, बाद में आये पदार्थ का विशेषण बनकर चमत्कार उत्पन्न करता है।	(१) 'एकावली' में बाद में आये हुए पदार्थ पहले आये हुये पदार्थों के विशेषण बनकर चमत्कार उत्पन्न करते हैं।
(२) 'मालादीपक में, अनेक पदार्थों का एक साधारणधर्म के साथ सम्बन्ध होने के कारण एक अतिरिक्त सौन्दर्य की रचना की जाती है।	(२) 'एकावली' में इस प्रकार के अतिरिक्त सौन्दर्य की रचना के लिये कोई स्थान नहीं होता।

सार—

सारो नाम पदोत्कर्षः सारतायाः यथोत्तरम्।
सारं सारस्वतं तत्र काव्यं तत्र शिवस्तवः॥ ९०॥

सान्वय-लक्षण—सारतायाः यथोत्तरं पदोत्कर्षः सारः नाम।

अनेक पदार्थों के वर्णन में जहाँ पूर्व-पूर्व पदार्थ की अपेक्षा उत्तर-उत्तर पदार्थ की उत्कृष्टता का वर्णन किया जाय वहाँ सार अलंकार होता है।

उदाहरण—सारस्वतं सारं, तत्र काव्यं, तत्र शिवस्तवः।

(इस संसार में) विद्या सर्व श्रेष्ठ है। विद्या में भी काव्य श्रेष्ठ है तथा काव्य में भी शिव की स्तुति अत्यन्त उत्कृष्ट है। यहाँ पहले विद्या की श्रेष्ठता का वर्णन किया गया, फिर उससे उत्कृष्ट काव्य को बतलाया गया और तदनन्तर उससे भी श्रेष्ठ शिव की स्तुति को कहा गया, अतः यहाँ 'सार' अलंकार है।

उदारसार—

उदारसारश्चेद् भाति भिन्नोऽभिन्नतया गुणः।
मधुरं मधु पीयूषं तस्मात् तस्मात् कवेर्वचः॥ ९१॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सान्वय-लक्षण—चेत् भिन्नः गुणः अभिन्नतया भाति स उदारसारः।

जहाँ उत्कृष्ट गुण भिन्न होने पर भी अभिन्नरूप में वर्णित किया जाय वहाँ उदारसार अलंकार होता है।

उदाहरण—मधु, मधुरं तस्मात् पीयूषं, तस्मात् कवेर्वचः।

मधु (शहद) मधुर (मीठा) होता है, अमृत उससे भी अधिक मधुर होता है तथा कवि की वाणी उससे भी अधिक मधुर होती है। यहाँ मधु, अमृत, तथा कवि की वाणी इन तीनों का माधुर्य भिन्न-भिन्न होने पर भी उनका अभिन्न रूप में वर्णन किया गया है, अतः उदारसार अलंकार है।

यथासंख्य—

यथासंख्यं द्विधार्थाश्चेत् क्रमादेकैकमन्विताः।
शत्रुं मित्रं द्विषत्पक्षं जय, रञ्जय, भञ्जय ॥ ९२ ॥

सान्वय-लक्षण—चेत् द्विधार्थाः क्रमात् एकैकम् अन्विताः यथासंख्यम्।

जहाँ कारक एवं क्रिया-वाचक अनेक पदार्थों का क्रमशः क्रिया एवं कारक के साथ अन्वय किया गया हो, वहाँ यथासंख्य अलंकार होता है। तात्पर्य यह है कि कारक पदार्थों का कथन एक जगह किया गया हो, फिर उनका अन्वय संख्या के अनुसार क्रमशः कर दिया जाय।

उदाहरण—शत्रुं, मित्रं, द्विषत्पक्षं, जय, रञ्जय, भञ्जय (अर्थात्-शत्रुं जय, मित्रं रञ्जय, द्विषत्पक्षं भञ्जय।)

(हे राजन् ! तुम) शत्रुओं को जीतो, मित्रों को प्रसन्न करो, शत्रुपक्ष को भग्न करो। यहाँ पहले शत्रु–मित्र–द्विषत्पक्ष के कर्मकारक कहे गये और बाद में इनकी जय–रञ्जय–भञ्जय ये क्रियायें कही गयीं। इनका क्रमशः एक शब्द के साथ एक क्रिया का सम्बन्ध किया है, अतः यथासंख्य अलंकार है।

पर्याय—

पर्यायश्चेदनेकत्र स्यादेकस्य समन्वयः।
पद्मं मुक्त्वा गता चन्द्रं कामिनीवदनोपमा ॥ ९३ ॥

सान्वय-लक्षण—चेत् एकस्य अनेकत्र समन्वयः स्यात् पर्यायः।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जहाँ एक वस्तु अथवा पदार्थ का क्रमशः अनेक पदार्थों के साथ सम्बन्ध दिखलाया जाय वहाँ पर्याय अलंकार होता है।

उदाहरण—कामिनी वदनोपमा पद्मं मुक्त्वा चन्द्रं गता।

किसी कामिनी के मुख की उपमा कमल को छोड़कर चन्द्रमा में चली गयी। यहाँ कामिनी के मुख की उपमा पहले कमल में थी फिर छोड़कर चन्द्रमा में चली गयी। इस भाँति एक मुख का सम्बन्ध क्रमशः अनेक पदार्थों के साथ दिखलाया गया है अतः यहाँ पर्याय अलंकार है। वस्तुतः दिन में मुख का सादृश्य पद्म में रहता है किन्तु रात्रि में कमल के संकुचित हो जानेपर वह चन्द्रमा में पहुँच जाता है। इस प्रकार यह वर्णन उचित ही है।

परिवृत्ति—

परिवृत्तिर्विनिमयो न्यूनाभ्यधिकयोर्मिथः।
जग्राहैकं शरं मुक्त्वा कटाक्षान् शत्रुयोषितः॥ ९४॥

सान्वय-लक्षण—न्यूनाभ्यधिकयोः मिथः विनिमयः परिवृत्तिः।

जहाँ सम (बराबर), न्यून अथवा अधिक पदार्थों में परस्पर आदान-प्रदान वर्णित किया जाय वहाँ परिवृत्ति अलंकार होता है।

(किसी वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ बदलना परिवृत्ति होता है)

उदाहरण—(नृपः) एकं शरं मुक्त्वा शत्रुयोषितःकटाक्षान् जग्राह।

राजा ने (शत्रु पर) एक बाण छोड़कर उसकी स्त्री के अनेकों कटाक्षों को ग्रहण किया। यहाँ राजा ने एक बाण (न्यून) प्रदान कर अनेकों कटाक्षों को (अधिक) प्राप्त किया, अतः परिवृत्ति अलंकार है।

परिसंख्या—

परिसंख्या निषिध्यैकमन्यस्मिन् वस्तुयन्त्रणम्।
स्नेहक्षयः प्रदीपेषु स्वान्तेषु न नतभ्रुवाम्॥ ९५॥

सान्वय-लक्षण—एकं निषिध्य अन्यस्मिन् वस्तुयन्त्रणं परिसंख्या।

जहाँ किसी वस्तु का एक स्थान में निषेध कर (वस्तु की स्थिति का अभाव

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

कह कर) अन्य स्थान पर उसी वस्तु की स्थिति का कथन किया जाता है, वहाँ परिसंख्या अलंकार होता है।

उदाहरण—प्रदीपेषु स्नेहक्षयः नतभ्रवां स्वान्तेषु न।

दीपकों में स्नेह (तैल) का क्षय हो गया किन्तु कामिनियों के हृदयों में स्नेह (प्रेम) का क्षय नहीं हुआ। यहाँ स्नेह शब्द श्लिष्ट है। स्नेह का अर्थ प्रेम तथा तैल दोनों है। दीपकों में स्नेह की सत्ता का अभाव कहकर स्त्रियों में उसे स्थित किया गया है, अतः यहाँ परिसंख्या अलंकार है।

विकल्प—

विकल्पस्तुल्यबलयोर्विरोधश्चातुरीयुतः ।
कान्त चित्तेऽधरे वापि कुरु त्वं वीतरागिताम् ॥ ९६ ॥

सान्वय-लक्षण—तुल्यबलयोः चातुरीयुतः विरोधः विकल्पः।

वचनों की चतुरता के द्वारा जहाँ समान बल वाले दो पदार्थों का विरोध युक्ति पूर्वक दिखलाया जाय वहाँ विकल्प अलंकार होता है।

उदाहरण—कान्त ! त्वं चित्ते वापि अधरे वीतरागितां कुरु।

(कोई खण्डिता नायिका किसी नायक से कह रही है) हे प्रिय ! तुम मेरे चित्त को अथवा अपने ओष्ठ को वीतराग करो। यहाँ राग शब्द श्लिष्ट है। उसका अर्थ अनुराग (प्रेम) तथा लालिमा दोनों हैं। नायिका के कहने का अभिप्राय यह है कि नायक या तो मुझसे ही प्रेम करे अथवा अन्य स्त्रियों के चुम्बन द्वारा अपने ओष्ठ की लालिमा को दूर करे किन्तु उपर्युक्त उदाहरण में तो सीधे रूप में प्रिया के प्रेम तथा अधर की लालिमा को एक साथ दूर करने को कहा गया है। किन्तु प्रिया का प्रेम एवं ओष्ठ की लालिमा को एक साथ दूर करना असंभव है। क्योंकि ये तुल्यबल एवं परस्पर विरुद्ध हैं किन्तु फिर भी यहाँ उनका एक साथ वर्णन किया गया है, अतः विकल्प अलंकार है।

यदि नायक अपने ओष्ठ की लालिमा को अन्य स्त्री के चुम्बन द्वारा दूर करता है, तो खंडिता नायिका के हृदय में उसके लिये प्रेम नहीं रहेगा और यदि वह नायिका के चित्त में अपने प्रति अनुराग रखना चाहता है तो अन्य रमणी के चुम्बन द्वारा अपने ओष्ठ की लालिमा को दूर नहीं कर सकेगा, यही दोनों की परस्पर विरुद्धता है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

समुच्चय—

भूयसामेकसम्बन्धभाजां गुम्फः समुच्चयः ।
नश्यन्ति पश्चात् पश्यन्ति भ्रश्यन्ति च तव द्विषः ॥९७॥

सान्वय-लक्षण—एकसम्बन्धभाजां भूयसां गुम्फः समुच्चयः ।

एक ही पदार्थ से सम्बन्ध अनेक पदार्थों का एक साथ गुम्फन जहाँ किया हो अर्थात् एक ही कारक रूप पदार्थ का अनेक-क्रिया-रूप पदार्थों के साथ जहाँ सम्बन्ध दिखलाया गया हो वहाँ समुच्चय अलंकार होता है ।

उदाहरण—(हे राजन् !) तव द्विषः नश्यन्ति, पश्यन्ति पश्चात् भ्रश्यन्ति ।

हे राजन् ! तुम्हारे शत्रु नष्ट होते हैं, देखते हैं और बाद में भ्रष्ट हो जाते हैं । तात्पर्य यह है कि हे राजन् ! आपके शत्रु पहले तो राज्य से च्युत हो जाते हैं तत्पश्चात् वे पीछे देखते हैं और अन्त में भ्रष्ट हो जाते हैं । यहाँ शत्रु राजाओं का सम्बन्ध 'नश्यन्ति' 'पश्यन्ति' 'भ्रश्यन्ति' अनेक क्रियाओं के साथ वर्णित किया गया है, अतः समुच्चय अलंकार है ।

सम तथा समुच्चय अलंकारों में अन्तर

सम	समुच्चय
(१) 'सम' अलंकार में अच्छी और बुरी वस्तुओं का उचित सम्बन्ध दिखलाया जाता है । किन्तु इन्हें कारण नहीं कहा जा सकता है ।	(१) 'समुच्चय' अलङ्कार में तो अच्छे और बुरे कारण एकत्र होकर किसी परिणाम की रचना किया करते हैं ।

समाधि—

समाधिः कार्यसौकर्यं कारणान्तरसंनिधेः ।
उत्कण्ठितां च कलयन् जगामास्तं च भानुमान् ॥ ९८ ॥

सान्वय-लक्षण—(यदि) कारणान्तरसंनिधेः कार्यसौकर्यं (स्यात् तदा) समाधिः ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जिस वर्णन में कार्य सिद्धि के निमित्त एक कारण के उपस्थित रहने पर भी अन्य (आकस्मिक) कारण द्वारा कार्य की सिद्धि में सरलता का वर्णन किया गया हो वहाँ समाधि अलंकार होता है।

उदाहरण—'उत्कण्ठितां कलयन् भानुमान् अस्तं जगाम'।

(सायंकाल के समय अपने प्रिय अथवा नायक के समीप जाने के लिये) अत्यन्त उत्सुक नायिका को देखकर सूर्य अस्त हो गया। यहाँ वस्तुतः प्रिय के घर जाने के निमित्त नायिका की प्रबल उत्कण्ठा ही कारण है। किन्तु फिर भी कवि ने सूर्य के अस्त होने के कारण उत्पन्न हुये अन्धकाररूप दूसरे कारण को भी अकस्मात् ही उपस्थित कर दिखलाया है। जिससे कार्य की सफलता में अधिक सुगमता आ गई है। अतः यहाँ समाधि अलङ्कार है।

प्रत्यनीक—

प्रत्यनीकं बलवतः शत्रोः पक्षे पराक्रमः।
जैत्रनेत्रानुगौ कर्णावुत्पलाभ्यामधः कृतौ ॥ ९९ ॥

सान्वय-लक्षण—बलवतः शत्रोः पक्षे पराक्रम, प्रत्यनीकम् ॥

जहाँ बलवान् शत्रु के पराजित करने में असमर्थ व्यक्ति उसके सहायक वर्ग को तिरस्कृत करने में अपना पराक्रम दिखलाये वहाँ प्रत्यनीक अलङ्कार होता है।

उदाहरण—जैत्रनेत्रानुगौ कर्णौ उत्पलाभ्याम् अधः कृतौ।

(नायिका के दोनों कानों में लगे हुये आभूषण रूप में स्थित)—कमलों ने अपने विजेता नेत्रों के अनुगामी कानों को दबा दिया है। अर्थात् नायिका ने कानों के ऊपर शोभा के लिये कमलों को लगा लिया। वस्तुतः नेत्र तथा कान दोनों ही पास-पास रहा करते हैं अतः इनका साहचर्य होना स्वाभाविक ही है। इसमें नेत्र इतने सुन्दर हैं कि चाहते हुए होने पर भी कमल उनको पराजित न कर सका अतः दुर्बल कानों पर, जो कि नेत्रों के ही पक्ष के हैं, कमलों ने आक्रमण कर उन्हें पराजित कर दिया। अतः यहाँ 'प्रत्यनीक' अलङ्कार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

प्रतीप—

प्रतीपमुपमानस्य हीनत्वमुपमेयतः ।
दृष्टं चेद्वदनं तस्याः किं पद्मेन किमिन्दुना ॥ १०० ॥

सान्वय-लक्षण—(यत्र) उपमेयतः उपमानस्य हीनत्वं (तत्र) प्रतीपम् ।

जहाँ उपमेय से उपमान की हीनता का वर्णन किया जाय वहाँ प्रतीप अलंकार होता है ।

उदाहरण—चेत् तस्याः वदनं दृष्टं, पद्मेन किं इन्दुना किम् ।

यदि उस नायिका का मुख देख लिया तो फिर कमल और चन्द्रमा से क्या ? अर्थात् उस नायिका के मुख को देख लेने के पश्चात् कमल एवं चन्द्रमा का देखना निरर्थक है । यहाँ मुख उपमेय है तथा कमल एवं चन्द्र उपमान । उपमेय मुख की अपेक्षा उपमान कमल एवं चन्द्र की हीनता का वर्णन किया गया है । (नायिका के मुख में इतना सौन्दर्य एवं आह्लाद है कि उसके सामने कमल एवं चन्द्र दोनों ही तुच्छ प्रतीत होते हैं) । अतः यहाँ प्रतीप अलंकार है ।

प्रतीप एवं व्यतिरेक अलंकारों में अन्तर

प्रतीप	व्यतिरेक
(१) 'प्रतीप' अलंकार में उपमेय की उपस्थिति में उपमान की व्यर्थता बतलाई जाती है । साथ ही उपमेय की उत्कृष्टता भी वर्णित होती है ।	(१) 'व्यतिरेक' अलंकार में उपमेय के किसी गुण का आधिक्य अथवा न्यूनता बतलाते हुए उपमान की अपेक्षा उपमेय को अधिक अथवा न्यून बतलाया जाता है ।
(२) 'प्रतीप' का वर्णन केवल साधर्म्य में ही उपलब्ध होता है ।	(२) 'व्यतिरेक' साधर्म्य एवं वैधर्म्य दोनों में ही होता है ।

उल्लास—

उल्लासोऽन्यमहिम्ना चेद् दोषो ह्यन्यत्र वर्ण्यते ।
तदभाग्यं धनस्यैव यन्नाश्रयति सज्जनम् ॥ १०१ ॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सान्वय-लक्षण—चेत् अन्यमहिम्ना अन्यत्र दोषः वर्ण्यते, उल्लासः ।

जहाँ किसी पदार्थ के गुण के द्वारा (अथवा दोष के द्वारा) किसी अन्य पदार्थ के दोष (अथवा गुण) का वर्णन किया जाय वहाँ उल्लास अलंकार होता है ।

उदाहरण—यद् धनं सज्जनं न आश्रयति तद्धनस्य एव अभाग्यम् ।

यदि धन किसी सज्जन के आश्रय को नहीं लेता है तो यह धन का ही दुर्भाग्य है । यहाँ पहले सज्जन की महिमा का वर्णन किया गया है और फिर उसीके आधार पर धन के दुर्भाग्यत्व रूपी दोष का उल्लेख किया गया है । अतः यह उल्लास अलंकार है ।

तद्गुण—

तद्गुणाः स्वगुणत्यागादन्यतः स्वगुणोदयः ।
पद्मरागारुणं नासामौक्तिकं तेऽधराश्रितम् ॥ १०२ ॥

सान्वय-लक्षण—स्वगुणत्यागात् अन्यतः स्वगुणोदयः तद्गुणः ।

जिस रचना में कोई पदार्थ (सम्पर्क के कारण) अपने गुण का त्यागकर किसी दूसरे ही पदार्थ के गुण को प्राप्त करता हुआ वर्णित किया गया हो तो वहाँ तद्गुण अलंकार होता है ।

उदाहरण—अधराश्रितं ते नासामौक्तिकं पद्मरागारुणम् ।

(किसी नायिका के प्रति उक्ति) तुम्हारे ओष्ठ पर टिकने (आश्रित रहने) के कारण तुम्हारी नाक का मोती पद्मरागमणि के सदृश लाल हो गया है ।

वस्तुतः मोती का रंग श्वेत ही होता है किन्तु यहाँ उसका पद्मरागमणि के समान लाल हो जाना बतलाया गया है । इसका कारण नायिका के ओष्ठ के साथ उसका निकट सम्पर्क होना ही है । मोती ने अपने स्वाभाविक गुण 'श्वेतिमा' को छोड़कर ओष्ठ के गुण 'लालिमा' को प्राप्त कर लिया है, अतः उक्त उदाहरण में तद्गुण अलंकार है ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

तद्गुण और मीलित अलंकारों में अन्तर

तद्गुण

(१) 'तद्गुण' अलंकार में एक पदार्थ का गुण दूसरे पदार्थ के गुण को अपने प्रभाव से आत्मसात् (अपने समान) कर लेता है। अर्थात् दूसरे पदार्थ उसके गुण को स्वयं स्वीकार कर लेता है।

(२) 'तद्गुण' में दो भिन्न गुण वाले पदार्थ रहा करते हैं। एकका गुण इतना प्रभावशाली होता है कि वह दूसरे के गुण को दबा दिया करता है, परिणाम यह होता है कि दबा हुआ पदार्थ विवशतावश अपना गुण छोड़ दूसरे के गुण को ग्रहण कर लिया करता है।

मीलित

(१) 'मीलित में' दोनों पदार्थों में जो अधिक प्रभावशाली पदार्थ होता है, वह अपने प्रभाव से दूसरे को प्रभावित कर लेता है। उनमें जो निर्बल होता है वह स्वयं उससे प्रभावित नहीं होना चाहता है किन्तु बलवान पदार्थ ही निर्बल को अपने प्रभाव से प्रभावित कर लिया करता है।

(२) 'मीलित' में तो दोनों पदार्थों के गुणों में समानता रहा करती है। अतः एक से दूसरे के ग्रहण करने का प्रश्न ही नहीं उठता। केवल इतना ही होता है कि एक दूसरे से प्रभावित हो उठता है।

महाकवि जयदेव ने पूर्वरूप अलंकार को दो परिभाषायें तथा दो उदाहरण दिये जिनमें प्रथम का उल्लेख निम्न प्रकार किया गया है—

पूर्वरूप (प्रथम)—

पुनः स्वगुणसंप्राप्तिर्विज्ञेया पूर्वरूपता।
हरकण्ठांशुलिप्तोऽपि शेषस्त्वद्यशसा सितः ॥ १०३ ॥

सान्वय-लक्षण—पुनः स्वगुणसंप्राप्तिः पूर्वरूपता विज्ञेया।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जहाँ कोई पदार्थ पुनः अपने गुण को प्राप्त कर लेता है अर्थात् पहले किसी पदार्थ के सम्पर्क से किसी पदार्थ का गुण किसी अन्य पदार्थ में चला जाय, किन्तु पुनः किसी अन्य पदार्थ की सहायता से उस पदार्थ का अपना खोया हुआ गुण पुनः प्राप्त हो जाय तो वहाँ पूर्वरूप अलंकार होता है।

उदाहरण—हरकण्ठांशुलिप्तः अपि शेषः त्वद्यशसा सितः।

(कोई कवि किसी राजा की प्रशंसा करता हुआ उससे कह रहा है—) हे राजन्! भगवान् शंकर के गले (कण्ठ) में लिपटे रहने पर भी (कण्ठ में संलग्न होने के कारण नीली किरणों से अनुरंजित होने पर भी) शेष (शेष-नाग) तुम्हारे यश के कारण पुनः श्वेतवर्ण का हो गया है।

स्वभावतः शेष नाग का वर्ण श्वेत माना गया है, वह शंकर के गले में लिप्त होने के कारण नीलवर्ण का हो जाता है, किन्तु राजा के यश (कीर्ति से पुनः श्वेत हो जाता है। यश अथवा कीर्ति का वर्ण श्वेत माना गया है। यहाँ शेष नाग का गुण शुभ्रता, शिव के कण्ठ में लिपटे हुए होने के कारण नष्ट हो गया था, राजा की कीर्ति से उसका पहले वाला गुण श्वेतिमा पुनः उसे प्राप्त हो गयी है, अतः पूर्वरूप अलङ्कार है।

पूर्वरूप (द्वितीय)—

यद् वस्तुनोऽन्यथारूपं तथा स्यात् पूर्वरूपता।
दीपे निर्वापिते ह्यासीत् काञ्चीरत्नैरहर्महः॥ १०४॥

सान्वय-लक्षण—वस्तुनः यत् अन्यथारूपं तथा स्यात् पूर्वरूपता।

जहाँ किसी पदार्थ का बदला हुआ रूप पुनः अपनी पूर्वरूपता को प्राप्त कर ले वहाँ पूर्वरूप अलङ्कार होता है।

उदाहरण—दीपे निर्वापिते काञ्चीरत्नैः अहर्महः आसीत्।

दीपक बुझा देने पर भी नायिका की करधनी में जड़े हुये रत्नों से दिन के प्रकाशन की तरह प्रकाश हो रहा था। दीपक के बुझ जाने पर अन्धकार हो जाना अनिवार्य था किन्तु अन्धकार हुआ नहीं क्योंकि नायिका की करधनी में जटित मणियों द्वारा वह दूर होता रहा और प्रकाश बना ही रहा। अतः यहाँ पूर्व रूप अलङ्कार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

अतद्गुण—

सङ्गतान्यगुणानङ्गीकारमाहुरतद्गुणम् ।
विशन्नपि रवेर्मध्यं शीत एव सदा शशी ॥ १०५ ॥

सान्वय-लक्षण—संगत-अन्यगुण-अनङ्गीकारं अतद्गुणं आहुः ।

जहाँ कोई पदार्थ अपने से सम्बद्ध दूसरे पदार्थ के गुण को नहीं स्वीकार करता है वहाँ अतद्गुण अलंकार होता है ।

उदाहरण—रवेः मध्यं विशन् अपि शशी सदा शीत एव ॥

सूर्य के मध्य में प्रविष्ट होता हुआ होने पर भी चन्द्रमा सदैव शीतल ही रहा करता है । यहाँ सूर्य तथा चन्द्र के सम्बन्ध का वर्णन किया गया है । सूर्य उष्ण होता है अतः उसके सम्बन्ध के कारण चन्द्रमा में भी उष्णता होनी चाहिए थी किन्तु चन्द्रमा सूर्य से सम्बन्धित रहने पर भी उसके गुण को स्वीकार नहीं करता है, वह शीतल ही बना रहता है । अतः यहाँ अतद्गुण अलंकार है ।

अतद्गुण तथा तद्गुण अलंकारों में अन्तर

अतद्गुण	तद्गुण
(१) "अतद्गुण" में न्यूनगुण-वाला पदार्थ उत्कृष्ट गुणवाले पदार्थ के सम्पर्क को प्राप्त होने पर भी उसके गुण को ग्रहण नहीं करता ।	(१) "तद्गुण" में न्यूनगुण-वाला पदार्थ उत्कृष्ट गुणवाले पदार्थ से सम्बन्धित होने पर उसके गुण को स्वीकार कर लेता है ।

अनुगुण—

प्राक्सिद्धस्वगुणोत्कर्षोऽनुगुणः परसन्निधेः ।
कर्णोत्पलानि दधते कटाक्षैरपि नीलताम् ॥ १०६ ॥

सान्वय-लक्षण—परसन्निधेः प्राक्सिद्धस्वगुणोत्कर्षः अनुगुणः ।

अन्य पदार्थ की समीपता के कारण किसी पदार्थ के पहले से ही सिद्ध स्वाभाविक गुण में अधिक उत्कर्ष आ जाय, वहाँ अनुगुण अलंकार होता है ।

उदाहरण—कर्णोत्पलानि कटाक्षैरपि नीलतां दधते ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(नायिका के कानों में लगे हुए) नीलकमल (नायिका के) कटाक्षों के सांमीप्य से और भी अधिक नीलिमा को धारण कर रहे हैं। नीलकमल तो स्वभावतः नील होते हैं किन्तु कटाक्षों की समीपता से उनका पूर्वसिद्ध गुण नीलिमा और भी अधिक उत्कृष्टता प्राप्त कर रहा है।

अवज्ञा—

अवज्ञा वर्ण्यते वस्तु गुणादोषाक्षमं यदि।
म्लायन्ति यदि पद्मानि का हानिरमृतद्युतेः ॥ १०७ ॥

सान्वय-लक्षण—यदि गुणदोषाक्षमं वस्तु वर्ण्य ते अवज्ञा।

यदि किसी एक के गुण अथवा दोष का सम्बद्ध अन्य पदार्थ के गुण अथवा दोष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, तो वहाँ अवज्ञा अलंकार होता है।

उदाहरण—यदि पद्मानि म्लायन्ति अमृतद्युतेः का हानिः

(चन्द्रमा के उदित हो जाने पर) यदि कमल मुरझा जाते हैं तो चन्द्रमा की क्या हानि है ? कमल का मलिन हो जाना दोष है पर उस दोष का प्रभाव चन्द्रमा पर कुछ भी नहीं होता। उसमें अमृतद्युतित्व यथापूर्व ही रहता है। अतः यहाँ अवज्ञा अलंकार है।

विशेष—अवज्ञा अलंकार उल्लास अलंकार का उलटा अलंकार है। किसी एक पदार्थ के गुण अथवा दोष से अन्य पदार्थ में गुण अथवा दोष के आने के वर्णन में उल्लास अलंकार होता है। ठीक इसके विपरीत किया पदार्थ के गुण-दोष से अन्य पदार्थ में गुण दोष आने के वर्णन में अवज्ञा अलंकार होता है।

प्रश्नोत्तर—

प्रश्नोत्तरं क्रमेणोक्तौ स्यूतमुत्तरमुत्तरम्।
यत्राऽसौ वेतसी पान्थ ! तत्रासौ सुतरा सरित् ॥ १०८ ॥

सान्वय-लक्षण—क्रमेण उक्तौ उत्तरं उत्तरं स्यूतं प्रश्नोत्तरम्।

जहाँ क्रमशः प्रश्न तथा उत्तर के कथन में आगे-आगे उत्तर संलग्न होते चले आवें वहाँ प्रश्नोत्तर अलंकार होता है। इस अलंकार में प्रश्न तथा उत्तर का

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वर्णन होता है तथा प्रश्नमात्र का वर्णन कर उत्तर की कल्पना तथा उत्तरमात्र का वर्णन कर प्रश्न की कल्पना कर ली जाती है।

उदाहरण—पान्थ ! यत्र असौ वेतसी तत्र असौ सरित् सुतरा।

हे पथिक ! जहाँ यह वेतस वृक्ष (दिखलाई पड़ रहा है) वहीं पर यह नदी सरलतापूर्वक पार करने योग्य है। इस उदाहरण में उत्तर का वर्णन किया गया है, कोई कामुकी नायिका उत्तर दे रही है। इस उत्तर से ज्ञात होता है कि किसी राहगीर ने नदी के किनारे पहुँचकर किसी कामिनी से प्रश्न किया होगा कि यह नदी किस स्थलपर सरलतापूर्वक पार करने योग्य है ? उस कामिनी ने उत्तर दिया कि जहाँ वेतसीकुञ्ज है, वहीं नदी पार करने योग्य है। इस उत्तर में यह संकेत छिपा हुआ है कि वह कामिनी कामकेलि की इच्छा रखती है तथा इस कार्य के निमित्त वेतसीकुञ्ज से अधिक अच्छा अन्य कोई निरापद स्थान नहीं है, क्योंकि वह निर्जन तथा ढँका हुआ है। अतः यहाँ प्रश्नोत्तर अलंकार है।

अनुमान और प्रश्नोत्तर अलंकारों में अन्तर

अनुमान	प्रश्नोत्तर
(१) 'अनुमान' में साध्य तथा साधन दोनों पक्ष स्थित रहा करते हैं।	(१) 'प्रश्नोत्तर' में केवल साधन रूप उत्तर का उल्लेख किया जाता है। साध्य की कल्पना स्वयं करनी पड़ती है।
(२) 'अनुमान' में साध्य एवं साधन दोनों के रहने का स्थान प्रायः एक ही होता है।	(२) 'प्रश्नोत्तर' में साध्य—साधन रूप प्रश्न एवं उत्तर विभिन्न व्यक्तियों में रहा करते हैं।

पिहित—

पिहितं परवृत्तान्तज्ञातुरन्यस्य चेष्टितम्।
प्रिये गृहागते प्रातः कान्ता तल्पमकल्पयत्॥ १०९॥

सान्वय-लक्षण—परवृत्तान्तज्ञातुः अन्यस्य चेष्टितं पिहितम्।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

किसी व्यक्ति की गुप्त बात जानने के लिये अन्य व्यक्ति जहाँ (साभिप्राय) चेष्टा किया करता है, वहाँ पिहित अलंकार होता है। तात्पर्य यह है कि वह दूसरा व्यक्ति रहस्यमय शब्दों द्वारा किसी बात को नहीं कहेगा अपितु उसकी चेष्टा द्वारा यह ज्ञात हो जावेगा कि उसे रहस्य ज्ञात है।

उदाहरण--प्रातः प्रिये गृहागते कान्ता तल्पमकल्पयत्।

प्रातःकाल पति के घर लौटने पर प्रिया ने शय्या बिछा दी। यहाँ कान्ता यह बात जानती है कि नायक रात भर किसी अन्य नायिका के समीप रहा है अतः वह इसलिये शय्या बिछा देती है कि नायक रातभर का थका हुआ है, अब वह आराम कर ले। यहाँ नायिका की चेष्टा द्वारा यह स्पष्ट ज्ञात हो रहा है कि नायक का रातभर का सम्पूर्ण चरित उसे ज्ञात है इस प्रकार कान्ता की चेष्टा द्वारा कान्त के गुप्त वृत्तान्त की जानकारी प्रकट हो रही है अतः उक्त उदाहरण में पिहित अलंकार है।

व्याजोक्तिः—

व्याजोक्तिः शंकमानस्य छद्मना वस्तुगोपनम्।
सखि! पश्य, गृहारामपरागैरस्मि धूसरा॥ ११०॥

सान्वय-लक्षण—शंकमानस्य छद्मना वस्तुगोपनं व्याजोक्तिः।

जहाँ सन्देह करने वाले किसी व्यक्ति से अपनी गुप्त बात को छिपाये रखने के लिये (उसकी आँखों में धूल झोंकने के निमित्त) छल (कपट) के साथ कोई बात कही जाय वहाँ व्याजोक्ति अलंकार होता है।

उदाहरण--हे सखि! पश्य गृहारामपरागैः धूसरा अस्मि।

हे सखि! देखो मैं घर की वाटिका के पराग (धूलि) से धूसरित हो गयी हूँ। यह किसी व्यभिचारिणी स्त्री की उक्ति है जिसका भोग किया जा चुका है संकेतस्थलपर नायक द्वारा उपभुक्त होने के कारण उसके सारे शरीर में धूल लग गयी है। वह स्त्री इस गुप्त वृत्तान्त को अपनी सखी से छिपाना चाहती है अतः छल के साथ कहती हैं कि कुछ और सन्देह न करो यह जो मेरे शरीर में धूल लगी हुई है, जिसे तुम देख रही हो, वह तो घर के बगीचे के पुष्पों का

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

पराग है। इस भाँति वह छलपूर्वक अपने रहस्य को छिपा लेती है। अतः यहाँ व्याजोक्ति अलङ्कार है।

व्याजोक्ति-शब्द का अर्थ ही है = व्याजेन उक्तिः अर्थात् जहाँ छलपूर्वक कथन किया जाय।

व्याजोक्ति तथा अपह्नुति अलंकारों में अन्तर

अपह्नुति	व्याजोक्ति
(१) 'अपह्नुति' अलङ्कार पर आधारित होता है। यह साधर्म्य, गोपनीय तथा स्थापनीय पदार्थों के बीच रहा करता है जिनमें एक उपमेय व दूसरा उपमान होता है।	(१) किन्तु व्योजोक्ति में साधर्म्य का कोई प्रयोग नहीं होता। गोपनीय तथा स्थापनीय पदार्थों में न कोई उपमेय होता है तथा न कोई उपमान।
(२) अपह्नुति में उपमेय तथा उपमान के रूप में वर्णित पदार्थों में एक प्रस्तुत रहता है तथा दूसरा अप्रस्तुत।	(२) व्याजोक्ति में दो पदार्थ प्रस्तुत रहते हैं।
(३) अपह्नुति में वक्ता जिस पदार्थ का गोपन करता है उसे स्पष्ट शब्दों में कह देता है।	(३) व्याजोक्ति में वक्ता जिस पदार्थ को छिपाना चाहता है उसका कथन नहीं किया करता है उसकी कल्पना पाठक या श्रोता को स्वयं करनी पड़ती है।
(४) अपह्नुति में उपमेय का विरोध कर उपमान की स्थापना की जाती है।	(४) व्याजोक्ति में किसी वस्तु का निषेध नहीं किया जाता, अपितु वास्तविक कारण के स्थान पर अवास्तविक कारण के साथ किसी बात को छलपूर्वक उपस्थित किया जाता है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

छेकापह्नुति तथा व्याजोक्ति में अन्तर

छेकापह्नुति	व्याजोक्ति
(१) छेकापह्नुति में वास्तविक वचन का ही कथन किया जाता है। हाँ, इतना अवश्य है कि उस वचन के वास्तविक अर्थ के स्थान पर चतुरतापूर्वक दूसरे अर्थ की कल्पना कर वस्तुस्थिति की वास्तविकता को छिपा दिया जाता है।	(१) व्याजोक्ति में जिस बात को छिपाना होता है उससे सम्बद्ध वचन का कथन नहीं किया जाता है तथा छल के साथ अवास्तविक कारण का उल्लेख किया जाता है।

वक्रोक्ति—

वक्रोक्तिः श्लेषकाकुभ्यां वाच्यार्थान्तरकल्पनम् ।

मुञ्च मानं दिनं प्राप्तं मन्द ! नन्दी हरान्तिके ॥ १११ ॥

सान्वय-लक्षण—श्लेषकाकुभ्यां वाच्यार्थान्तरकल्पनं वक्रोक्तिः ।

श्लेष अथवा काकु के द्वारा जहाँ अन्य अर्थ की कल्पना कर ली जाय वहाँ वक्रोक्ति अलङ्कार होता है।

उदाहरण—दिनं प्राप्तं, मानं मुञ्च मन्द नन्दी हरान्ति के।

कोई नायक सम्पूर्ण रात्रि नायिका को मनाता रहा किन्तु नायिका प्रसन्न न हुई। प्रातःकाल होने पर नायक पुनः नायिका से कह रहा है—"प्रिये। दिन हो गया, अतः अब तो मान छोड़ दो" किन्तु नायिका श्लेष द्वारा "मुञ्च मा नन्दिनं प्राप्तं" का दूसरा ही अर्थ लेती है। प्राप्तं नन्दिनं मा मुञ्च= समीप आये हुए बैल को न छोड़ना। और कहती है कि "मूर्ख ! नन्दी (वृषभ) तो भगवान् शंकर के पास है, वह यहाँ कहाँ ?

वक्रोक्ति शब्द का सीधा अर्थ है 'वक्र-उक्ति' अर्थात् कुटिल कथन अथवा साभिप्राय टेढ़ी बात कहना। उपर्युक्त उदाहरण में "दिन हो गया, अब तो रात्रि व्यतीत हो चुकी है, मान छोड़ दो" नायक के साभिप्राय इस कथन को नायिका श्लेष द्वारा 'समीप आये हुये नन्दी को न छोड़ना' इस दूसरे ही अर्थ की कल्पना करती है, अतः वक्रोक्ति अलङ्कार है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जहाँ श्रोता व्यक्ति काकु ध्वनि को ही आधार बनाकर अपने अनुसार वाक्य का अर्थ निकाल लिया करता है वहाँ काकुवक्रोक्ति अलंकर होता है।

वक्रोक्ति तथा अपह्नुति अलंकारो में अन्तर

वक्रोक्ति	अपह्नुति
(१) वक्रोक्ति में श्रोता दूसरे के कथन का अर्थ श्लेष अथवा काकु-ध्वनि द्वारा दूसरा ही ले लेता है।	(१) अपह्नुति में तो अपने कथन का ही गोपन (छिपाना) कर, अन्य वस्तु का कथन किया जाता है।

स्वभावोक्ति—

स्वभावोक्तिः स्वभावस्य जात्यादिषु च वर्णनम्।
कुरङ्गैरुत्तरङ्गाक्षि स्तब्धकर्णैरुदीक्ष्यते ॥ ११२ ॥

सान्वय-लक्षण—जात्यादिषु च स्वभावस्य वर्णनम् स्वभावोक्तिः।

किसी पदार्थ की जाति अथवा गुण अथवा क्रिया आदि के स्वभाव अर्थात् साधारण धर्म का जहाँ वर्णन किया जाता है वहाँ स्वभावोक्ति अलकार होता है।

उदाहरण—हे उत्तरङ्गाक्षि! स्तब्धकर्णैः कुरङ्गै उदीक्ष्यते।

हे चंचल नेत्रोंवाली! कानों को (निश्चल) खड़ा कर देने वाले हरिण देख रहे हैं।

कानों को खड़े करके देखना हिरणों का स्वभाव हुआ करता है। यहाँ उसका वर्णन किया गया है अतः स्वभावोक्ति अलंकार है।

भाविक—

भाविकं भूतभाव्यर्थसाक्षाद्दर्शनवर्णनम्।
अलं विलोकयाद्यापि युध्यन्तेऽत्र सुरासुराः ॥ ११३ ॥

सान्वय-लक्षण—भूत-भाव्यर्थ साक्षात्-दर्शनवर्णनं भाविकम्।

जहाँ भूतकालिक अथवा भविष्यत्-कालिक पदार्थ का प्रत्यक्ष देखा हुआ

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

वर्णन किया जाय (अर्थात् जो वस्तु हो चुकी है अथवा आगे होने वाली है उसका वर्णन इस प्रकार से किया जाय कि जैसे मानों वह इस समय भी आँखों के समक्ष हो रही हो ।) वहाँ भाविक अलंकार होता है ।

उदाहरण—अत्र अद्य अपि सुरासुराः युध्यन्ते अलं विलोकय ।

यहाँ आज भी देव और दानवों का युद्ध हो रहा है, भलीभाँति देखो ! यहाँ उस स्थान की भीषणता का वर्णन करने के लिये भूतकाल की घटना "देवासुर-संग्राम" का प्रत्यक्ष रूप में वर्णन किया गया है अतः भाविक अलंकार है ।

भाविकच्छवि—

देशात्मविप्रकृष्टस्य दर्शनं भाविकच्छविः ।
त्वं वसन् हृदये तस्याः साक्षात्पञ्चेषुरीक्ष्यसे ॥ ११४ ॥

सान्वय-लक्षण—देशात्मविप्रकृष्टस्य दर्शनं भाविकच्छविः ।

स्थान अथवा अपने से दूर में स्थित पदार्थ का समीप में स्थित होना जहाँ वर्णित हो (अर्थात् किसी पदार्थ की स्थिति ऐसी किसी वस्तु में वर्णित करना जो उस पदार्थ से बहुत दूर हो अथवा उस पदार्थ से उसका कोई आत्मिक सम्बन्ध न हो) वहाँ भाविकच्छवि अलंकार होता है ।

उदाहरण—(कोई दूती नायक के प्रति कह रही है) तस्याः हृदये वसन् साक्षात् पंचेषुः ईक्ष्यसे ।

उस नायिका के हृदय में निवास करते हुये तुम साक्षात् कामदेव ही प्रतीत हो रहे हो, वस्तुतः नायिका तो नायक के स्थान से बहुत दूर है। उसके हृदय में नायक कामदेव की भाँति सुशोभित हो रहा है अतः यहाँ भाविकच्छवि अलंकार है ।

उदात्त—

उदात्तमृद्धिश्चरितं श्लाघ्यं चान्योपलक्षणम् ।
सानौ यस्याभवद् युद्धं तद् धूर्जटिकिरीटिनोः ॥ ११५ ॥

सान्वय-लक्षण—'ऋद्धिः श्लाघ्यं चरितं च अन्योपलक्षणं उदात्तम्' ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

जहाँ समृद्धि का अथवा प्रसंशनीय चरित्र का वर्णन किसी दूसरे वस्तु के अंगरूप में किया गया हो, वहाँ, उदात्त अलंकार होता है।

उदाहरण—यस्य सानौ धूर्जटिकिरीटिनोः युद्धं अभवत् तत्।

जिस (हिमालय पर्वत) के शिखर पर शिव तथा अर्जुन का (इतिहास-प्रसिद्ध) युद्ध हुआ था, यह वही (हिमालय) पर्वत है। यहाँ हिमालय की महानता तथा ऐश्वर्य का वर्णन शिव तथा अर्जुन-युद्ध की चर्चा के रूप में किया गया है। अतः उदात्त अलंकार है।

विशेष—यहाँ शिव तथा अर्जुन के युद्ध का वर्णन अप्रधान तथा हिमालय का वर्णन प्रधान है।

अत्युक्ति—

अत्युक्तिरद्भुतातथ्यशौर्यौदार्यादिवर्णनम् ।
त्वयि दातरि राजेन्द्र ! याचकाः कल्पशाखिनः ॥ ११६ ॥

सान्वय-लक्षण—अद्भुतातथ्यशौर्यौदार्यादिवर्णनम् अत्युक्तिः।

जिस रचना में किसी के अद्भुत एवं असत्य (अतथ्य), वीरता, पराक्रम, उदारता आदि का वर्णन किया गया हो तो वहाँ अत्युक्ति अलंकार होता है।

हे राजेन्द्र ! त्वयि दातरि याचकाः कल्पशाखिनः।

हे राजन् ! तुम्हारे जैसे दानी के होने पर याचक कल्पवृक्ष ही बन गये हैं। अथवा कल्पवृक्ष ही याचक बन गये हैं। किसी राजा का वर्णन करते हुए किसी कवि की यह उक्ति है। राजा की दानवीरता के कारण कल्पवृक्ष को याचक कहा जाना तथ्यहीन एवं अद्भुतता से पूर्ण कथन है। अथवा राजा से याचकों को इतना अधिक दान प्राप्त हो गया है कि जिसके कारण अब वे स्वयं कल्पवृक्ष बन गये हैं। यह कथन भी असत्य तथा आश्चर्यकारक है अतः यहाँ अत्युक्ति अलंकार है।

रसवदादि अलङ्कार—

रसभावतदाभासभावशान्तिनिबन्धनाः ।
रसवत्प्रेयऊर्जस्विसमाहितमयाभिधाः ॥ ११७ ॥

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

भावानामुदयः सन्धिः शबलत्वमिति त्रयः ।
अलङ्कारानिमान्सप्त केचिदाहुर्मनीषिणः ॥ ११८ ॥

अन्वय—रसभावतदाभासभावशान्तिनिबन्धनाः, रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वि, समाहितमयाभिधाः, भावानां उदयः, संधिः, शवलत्वं, इति च त्रयः अलङ्काराः । इमान् सप्त अलङ्कारान् केचित् मनषिणः आहुः ।

अर्थ—रस, भाव, उन दोनों का आभास (अर्थात् रसाभास और भावाभास) और भावशान्ति से सम्बन्धित रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वि तथा समाहित नाम के चार, तथा भावों के उदय, सन्धि और शवलता से उत्पन्न होने वाले भावोदय, भावसंधि, और भावशबलता नाम के तीन अलङ्कार अर्थात् कुल मिलाकर से सात अलङ्कार हैं जिनको कतिपय आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में स्वीकार किया है ।

विशेष—चन्द्रालोककार जयदेव ने उपर्युक्त श्लोकांश "केचिदाहुर्मनीषिणः" लिखकर यह भी स्पष्ट कर दिया है कि इन अलङ्कारों को किन्हीं विद्वानों ने स्वीकार किया है किन्तु उनको इन अलङ्कारों का वर्णन अभीष्ट नहीं है । अन्यथा यदि वे इन्हें स्वीकार करते तो क्रमशः इनके उदाहरण एवं परिभाषा आदि द्वारा उनका पृथक्-पृथक् वर्णन भी करते ।

यहाँ संक्षेप में उपर्युक्त सातों अलङ्कारों की परिभाषा देना अनुपयुक्त न होगा । कुछ ज्ञानवर्धन ही होगा अतः उनको भी लिख दिया जा रहा है ।

(१) रसवत्—जहाँ एक रस किसी दूसरे रस अथवा भाव का अंग बन जाय वहाँ रसवत् अलङ्कार होता है ।

(२) प्रेय—जहाँ एक भाव किसी दूसरे पदार्थ का अंग बन कर आता है वहाँ प्रेय अलंकार होता है । अत्यन्त प्रिय होने के कारण इस अलंकार का नाम 'प्रेय' रखा गया (प्रकृष्टप्रियत्वात् प्रेयः) ।

ऊर्जस्वि—जहाँ रसाभास अथवा भावाभास किसी अन्य पदार्थ का अंग हो जाया करता है वहाँ ऊर्जस्वि अलंकार होता है ।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

(४) समाहित—जहाँ भावशान्ति का वर्णन अंग रूप में उपलब्ध होता है वहाँ समाहित अलंकार होता है।

(५) भावोदय—जिस रचना में भावोदय रसादि का अंग बनकर आवे यहाँ भावोदय अलंकार होता है।

(६) भाव सन्धि—जहाँ भावसन्धि का वर्णन रसादि के रूप में उपलब्ध होता है, वहाँ भावसन्धि अलंकार होता है।

(७) भावशवलता—जहाँ भावशवलता रसादि के अंगरूप में वर्णित होती है वहाँ भावशवलता अलंकार होता है।

संसृष्टि, संकर-अलंकार—

शुद्धिरेकप्रधानत्वं तथा संसृष्टिसंकरौ।
एतेषामेव विन्यासान्नालङ्कारान्तराण्यमी ॥११९॥

अन्वय—शुद्धिः, एक प्रधानत्वं तथा संसृष्टिसंकरौ एतेषां एव विन्यासात् अमी अलंकारान्तराणि।

कुछ आचार्यों ने शुद्धि, एकप्रधानत्व, संसृष्टि तथा संकर इन चार अलंकारों को भी पृथक् रूप से माना है। अतः जयदेव इन अलंकारो के बारे में कहते हैं।

जहाँ केवल एक ही अलंकार रहेगा वहाँ शुद्धि अलंकार होगा, एक ही रचना में एक से अधिक अलंकारों का समावेश होने पर जिस अलंकार की उसमें प्रधानता होगी वह एक प्रधानत्व अलंकार कहा जायेगा। इसके अतिरिक्त संसृष्टि (तिल और चावल के न्याय की भाँति जहाँ शब्द और अर्थ के अलंकार आपस में निरपेक्ष रूप से रहें तो वहाँ संसृष्टि होती है) और संकर (नीर-क्षीर न्याय के समान जहाँ अलंकारों की स्थिति एक स्थान पर होती है तो उसे संकर कहते हैं) भी अलंकार माने गये हैं। वस्तुतः ये अलंकार कोई पृथक् रूप से माने जाने योग्य अलंकार नहीं हैं क्योंकि ये तो निरूपण किये गये अलंकारों के ही विन्यासमात्र हैं।

इन मत की पुष्टि के लिये जयदेव एक और भी तर्क उपस्थित करते हैं—

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

सर्वेषां च प्रतिद्वन्द्व-प्रतिच्छन्दभिदाभृताम् ।
उपाधिः क्वचिदुद्भिन्नः स्यादन्यत्रापि संभवात् ॥१२०॥

अन्वय—प्रतिद्वन्द्वप्रतिच्छन्दभिदाभृतां सर्वेषां उद्भिन्नः उपाधिः क्वचित् अन्यत्रापि संभवात् स्यात् ।

प्रतिद्वन्द्व अर्थात् विरोध के कारण उत्पन्न होनेवाली अधिकता अथवा समानता या असमानता के कारण भिन्न रूप में उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण अलंकारों के भेद तो अन्य स्थानों में भी संभव हैं। अर्थात् न्यूनता और अधिकता के आधार पर यदि शुद्धि आदि अलंकारों की पृथक् सत्ता स्वीकार कर ली जाय तब तो अनवस्था-दोष आ जायेगा क्योंकि न्यूनता तथा आधिक्य के कारण तो अनेक स्थलों पर सम्पूर्ण अलंकारों के अनेकों भेद माने जा सकते हैं इस भाँति अलंकारों की संख्या की कोई सीमा भी निर्धारित न रह सकेगी। अतः उपर्युक्त अलंकारों की पृथक् रूप से सत्ता मानना उचित नहीं है।

माला परम्परा चैषां भूयसामनुकूलके ।
मनुष्ये भवतः क्वापि ह्यलङ्काराङ्गतां गते ॥१२१॥

अन्वय—एषां भूयसां माला परम्परा च अलंकाराङ्गतां गते क्वापि मनुष्य इव अनुकूलके भवतः ।

माला अथवा रशना के रूप में विद्यमान मालोपमा, रशनोपमा, मालारूपक, रशनारूपक आदि को भी पृथक् अलंकार मानना उचित नहीं है। क्योंकि इन सबका समावेश तो उपमा-रूपकादि अलंकारों के अन्तर्गत हो ही जाता है। (मालोपमा एवं रशनोपमा का उपमा में तथा मालारूपक और रशनारूपक का समावेश रूपक के अन्तर्गत हो जाता है।) यद्यपि यह अलंकार भी मनुष्य के शरीर में माला अथवा शृंखला के रूप में धारण किये गये आभूषणों की तरह अलंकार-सौन्दर्य के बढ़ानेवाले होते हैं किन्तु फिर भी उनकी पृथक् सत्ता स्वीकार करना उचित नहीं है।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

शब्दे पदार्थे वाक्यार्थे वाक्यार्थस्तबके तथा ।
एते भवन्ति विन्यासाः स्वभावातिशयात्मकाः ॥१२२॥
कस्याप्यतिशयोक्तेरित्यन्वर्थविचारणात् ।
प्रायेणामी ह्यलंकारा भिन्ना नातिशयोक्तितः ॥१२३॥

अन्वय—शब्दे, वाक्ये, वाक्यार्थे तथा वाक्यार्थस्तबके एते विन्यासाः स्वभावातिशयात्मकाः भवन्ति । अमी अलंकाराः प्रायेण कस्यापि अतिशयस्य उक्तेः इति अन्वर्थविचारणात् अतिशयोक्तितः भिन्नाः न ।

प्रायः सभी अलंकारों में चाहे वे शब्दगत हों, पदार्थगत हों, वाक्यार्थगत हों, अथवा वाक्यार्थ के समूह में होनेवाले हों, उनमें अतिशय की भावना किसी न किसी अंश में स्वाभाविक रूप से अवश्य रहा करती है। ये अलंकार प्रायः किसी अतिशय के वर्णन से भरे रहा करते हैं अतः अतिशयोक्ति शब्द के अर्थ पर विचार कर लेने पर यह कहना असंगत न होगा कि प्रत्येक अलंकार में अतिशयोक्ति रहती है। ऐसी स्थिति में किसी भी अलंकार को अतिशयोक्ति से भिन्न नहीं मानना चाहिये।

अब यहाँ यह सन्देह उत्पन्न होता है कि जब सभी अलंकारों में अतिशयोक्ति है ही, तथा अतिशयोक्ति को अलंकार माना भी गया तो फिर अन्य अलंकारों के मानने की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर निम्न कारिका में दिया गया है—

अलंकारप्रधानेषु दधानेष्वपि साम्यताम् ।
वैलक्षण्यं प्रतिव्यक्ति प्रतिभाति मुखेष्विव ॥१२४॥

अन्वय—साम्यतां दधानेषु अपि अलंकार—प्रधानेषु प्रतिव्यक्ति मुखेषु इव वैलक्षण्यं प्रतिभाति ।

यद्यपि अलंकारों में समानता होती ही है किन्तु फिर भी उनमें उसी प्रकार अपना-अपना पृथक्-पृथक् वैचित्र्य भी है कि जैसे प्रत्येक व्यक्ति के मुख की विलक्षणता पृथक् पृथक् हुआ करती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे सभी मनुष्यों के शरीर के अंग प्रायः समान हुआ करते हैं किन्तु फिर भी

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,

Vaidika Pandit Sri V Hariharan Collection, Sholinganallur, Chennai

उनके मुखों में कुछ इस प्रकार की विशेषतायें हुआ हो करती हैं कि जो उन्हें अन्य व्यक्तियों से पृथक् कर दिया करती हैं। इसी भाँति अलंकारों में समानतायें होने पर भी उनमें अपना-अपना पृथक् पृथक् चमत्कार भी है कि जिनके कारण उनकी पृथक् पृथक् सत्ता स्वीकार करनी हो पड़ती है यह बात ठीक है कि किसी न किसी अंश में प्रत्येक अलंकार में अतिशय का सामंजस्य अवश्य हो रहता हैं किन्तु फिर भी प्रत्येक अलंकार की अपनी-अपनी कुछ विशेषतायें भी हैं जिसके कारण उनकी पृथक्-पृथक् सत्ता स्वीकार करना उचित ही है।

जयदेव ने कुछ नवीन अलंकारों का भी विधान किया है अतः यह प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि प्राचीन अलंकारों के अतिरिक्त अन्य नवीन अलंकारों की स्थापना करने से क्या लाभ है? इसका उत्तर जयदेव ने स्वयं ही निम्न कारिका में दिया है—

अलंकारेषु तथ्येषु यद्यनास्था मनीषिणाम्।
तदर्वाचीनभेदेषु नाम्ना नाम्नाय इष्यताम् ॥१२५॥

अन्वय—यदि तथ्येषु अलंकारेषु मनीषिणाम् अनास्था तत् अर्वाचीनभेदेषु नाम्ना आम्नायः न इष्यताम्।

यदि वास्तविक अलंकारों में विद्वानों की आस्था न हो तो वे नवीन अलंकारों के प्रति भी नामों का पाठ स्वीकार न करें अर्थात् प्राचीन अलंकार-शास्त्रियों ने जिन अलंकारों का कथन किया है उनके नामों में यदि विद्वानों को आस्था है तो उनको नवीन अलंकारों के नामों के स्वीकार करने में भी (जिनका कथन जयदेव द्वारा किया गया है) कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। जैसे संसार में प्रतिदिन नवीन-नवीन प्रकार के आभूषणों का प्रचलन होता है तथा उनको प्रेम और आदर के साथ व्यक्तियों द्वारा स्वीकार भी किया जाता है उसी भाँति चन्द्रालोककार जयदेव द्वारा वर्णित नवीन अलंकारों के मानने में भी विद्वानों को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। क्योंकि सभी अलंकार सौन्दर्य अथवा चमत्कार की श्रीवृद्धि किया करते हैं।

CC-0.In Public Domain. Digitization by Muthulakshmi Research Academy,